कौल-कल्पतरु
चण्डी

वर्ष ४५ :: चैत्र-वैशाख २०४३ वि०—अप्रेल-मई १९८६ :: संख्या १-२

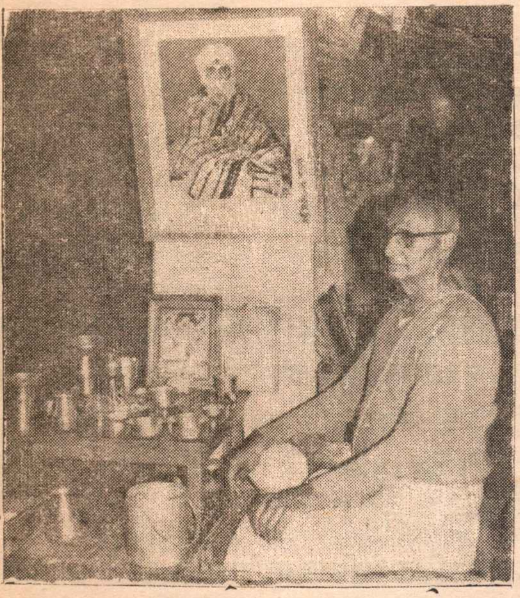

'विद्या-वाचस्पति'
पं० श्री कण्ठ शर्मा चक्रपाणि
(देखिये—'एक परिचय', पृष्ठ ९)

बीजात्मक सप्तशती के दो रूप
(अप्रेल-मई ८६ अङ्क का विशिष्ट साहित्य)

१—बीज-मन्त्रात्मक सप्तशती
प्रस्तुत-कर्त्ता : श्री अतुल टण्डन

२—बीज-त्रयात्मक सप्तशती
प्रदान-कर्त्ता : प०पू० स्वामी हिमालय अरण्य जी

पृष्ठ १—२४

यह प्रति ३)५० रु० * वार्षिक मूल्य २१ रु०

*** दो अतिरिक्त विशेषाङ्क सहित वार्षिक मूल्य ५५ रु० ***

ॐ ह्रीं

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

का

४५ वाँ वर्ष : सं० २०४३ वि० (सन् १९८६-८७ ई०)

चैत्र २०४३—अप्रैल १९८६ से 'चण्डी पत्रिका का नया ४५ वाँ वर्ष प्रारम्भ हो गया है।

'चण्डी' के नये ४५ वें वर्ष में ६ सामान्य अङ्क व दो सचित्र विशेषाङ्क प्रकाशित होंगे। विशेषाङ्कों की कोई संख्या न होगो। वे अतिरिक्त अङ्क होंगे। कुल ५०० पृष्ठों का शोध-पूर्ण एवं साधकोपयोगी साहित्य प्रकाशित होगा। पूर्ण विवरण इस प्रकार है—

६ सामान्य अंक (कुल २०० पृष्ठ)

'चण्डी' के ४५ वें वर्ष में ६ सामान्य अङ्क—१ अप्रेल-मई, २ जून-जुलाई, ३ अगस्त-सितम्बर, ४ अक्टूबर-नवम्बर, ५ दिसम्बर-जनवरी, ६ फरवरी-मार्च प्रकाशित होंगे। इन सामान्य अङ्कों में—बाबा श्री चरितामृत (लेख-संग्रह), सामयिक निबन्ध, पाठकों के प्रश्न-उत्तर, सम्पादकीय टिप्पणी, पर्व-महापर्व सम्बन्धी विशेष विवरण, पुस्तक-समालोचना, धार्मिक-स्थानों एवं साधकों के सचित्र परिचय, अनुभूत प्रयोग आदि स्तम्भों के अन्तर्गत महत्वपूर्ण लेख-साहित्य प्रस्तुत होगा।

इसके अतिरिक्त उक्त छहों अङ्कों में क्रम से निम्न-लिखित विशिष्ट साहित्य भी प्रकाशित होगा—

(१) बीजात्मक सप्तशती (अप्रेल-मई ८६ अंक में)

(२) दश-महाविद्या-सूत्रम् (जून-जुलाई ८६ अङ्क में)

(३) सप्तशती में मोक्ष-साधना (अगस्त-सितम्बर ८६ अङ्क में)

(४) बाबा श्री का जीवन-चरित (अक्टूबर-नवम्बर ८६ अङ्क में)

(५) पारायण-विधि (दिसम्बर-जनवरी ८७ अङ्क में)

(६) पञ्च-दशी यन्त्र-साधना (फरवरी-मार्च ८७ अङ्क में)

(शेष विवरण हेतु कृपया देखिये आवरण पृष्ठ ३)

वर्ष ४५ : चैत्र-वैशाख २०४३ वि०—अप्रेल-मई १९८६ : सं० १-२

१ सम्पादकीय १
२ श्री देव्यथर्व-शीर्षम् : श्री गोपाल कृष्ण अग्रवाल, दुमका, बिहार २
३ कानपुर के सम्मेलन में 'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल का निवेदन ३
४ दक्षिण भारत में कामाख्या योनि-पीठ : प० पू० श्री स्वामी त्र्यम्बकेश्वरानन्द, इन्दौर ७
५ 'विद्या-वाचस्पति' पं० श्रीकण्ठ शर्मा चक्रपाणि : डा० ऋषिकुमार चक्रपाणि, अमृतसर, पंजाब ९
६ तत्त्व-साधना : श्री बदन सिंह, रायभा, आगरा, उ० प्र० १२
७ वर्ष-गाँठ कब और कैसे मनायें ? : पं० सतीशकुमार उपाध्याय, इलाहाबाद, उ० प्र० १५
८ बीज-मन्त्रात्मक सप्तशती एवं बीज-त्रयात्मक सप्तशती १–२४

सम्पादकीय

'चण्डी' के गत वर्ष के पौषाङ्क में ७वें विश्व-पुस्तक-मेले में 'प्रामाणिक शाक्त-साहित्य' की प्रदर्शनी की सुखद सूचना पाठकों को दी जा चुकी है।

ठीक तीन महीने बाद ही दूसरी ऐतिहासिक घटना १२-१३ अप्रैल १९८६ को घटित हुई, जब उत्तर प्रदेश के महा-नगर कानपुर में **'अन्तरराष्ट्रीय ज्योतिष-तन्त्र विज्ञान सम्मेलन'** आयोजित हुआ, जिसमें 'चण्डी' कार्यालय द्वारा शाक्त-साधना-पीठ एवं अ० भा० शाक्त-सम्मेलन ने सक्रिय योग-दान प्रदान किया, जैसा कि 'चण्डी' के मानद सम्पादक 'कुलभूषण' शुक्लजी द्वारा उक्त सम्मेलन में पठित 'निवेदन' से स्पष्ट है, जो आगे शब्दशः प्रकाशित है।

राजर्षि अतुल टण्डन ने अकेले अपने बल पर सारे आयोजन का सफल संघटन एवं संचालन बड़ी योग्यता तथा कर्मठता के साथ किया। यदि उनके सहयोगियों में से एक-दो व्यक्तियों में भी वैसी ही तत्परता होती, तो यह सम्मेलन सदा के लिए स्मरणीय हो जाता। फिर भी उनके द्वारा आयोजित शाक्त-यज्ञ, तन्त्र-प्रदर्शनी एवं ज्योतिष-तन्त्र-सम्मेलन अपने ढँग का अनूठा हो रहा।

सम्मेलन में अ० भा० शाक्त सम्मेलन के अध्यक्ष वयोवृद्ध पूज्य काटजू जी, 'चण्डी' के मानद सम्पादक 'कुल-भूषण' शुक्लजी, शाक्त-साधना-पीठ से सम्बद्ध कौलाचार्य पं० काशीप्रसाद शुक्ल शास्त्री, आन्ध्र प्रदेश के पूर्णाभिषिक्त साधक पं० श्री पी० वी० हनुमन्त राव, बिहार के उत्कृष्ट साधक पूज्य श्री मंजुल, केरल के पं०श्रीवरदराज प्रभु, काशी के परम पूज्य कापालिक जी एवं प्रयाग के पं० श्रीसतीश-कुमार उपाध्याय, पं० श्री ए० एन० शुक्ल, ठाकुर श्री अमर सिंह, पंजाब के श्री ऋषिकुमार चक्रपाणि आदि ने भाग लिया। अनेक साधकों ने गुप्त रूप से उपस्थित रहकर सम्मेलन को गौरवान्वित किया।

इस प्रकार, जैसा कि पौषाङ्क के सम्पादकीय में हमने अपना निश्चय प्रकट किया था, 'शाक्त-समाज' के सङ्गठन के कार्यक्रम का सूत्रपात हो गया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि देश में जो भी शाक्त-संस्थायें हैं, उनके अध्यक्ष महोदय और सदस्य बन्धु 'शाक्त-समाज' के सङ्गठन के सम्बन्ध में अपने अनुभव, सुझाव आदि हमें लिखकर भेजने की कृपा करें, जिससे यह कार्यक्रम आगे प्रगति कर सके।

यहाँ हमें यह घोषित करते हुए हर्ष हो रहा है कि सितम्बर १९८६ में बिहार की राजधानी पटना में 'शाक्त साधना पीठ' के तत्त्वावधान में शाक्त-साहित्य प्रदर्शनी एवं शाक्त-सम्मेलन के आयोजन का प्रस्ताव हमें मिल चुका है और उसके सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। अतः बिहार में स्थित शाक्त संस्थाओं एवं साधकों से हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस सम्बन्ध में अपने विचार हमें शीघ्रातिशीघ्र लिख भेजने की कृपा करेंगे।

श्रीदेव्यथर्व-शीर्षम्

श्री गोपालकृष्ण अग्रवाल, दुमका (बिहार)

अथर्ववेद में देवी की महिमा को शीर्ष-स्थान प्राप्त है। यह एक-मात्र विद्या है, जो दृश्य और अदृश्य दोनों स्थलों में प्रभावी है। यह विद्या अचूक तथा तत्काल सिद्धि देती है। अथर्व-शीर्ष के ज्ञान के बिना शक्ति की साधना के रहस्य को पाना—आत्म-सात् करना—अन्धकार में विचरण करने जैसा है।

इदमथर्व-शीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्व-शीर्ष-जप-फलमाप्नोति। इदमथर्व-शीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति, शत-लक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चा-सिद्धि न विन्दति। शतमष्टोतरं चास्य पुरश्चर्या-विधिः स्मृतः।

निशीथे तुरीय-सन्ध्यायां जप्त्वा वाक्-सिद्धिर्भवति। प्राण-प्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्यां महा-देवी-सन्निधौ जप्त्वा महा-मृत्युं तरति।....

दश-वारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते। महा-दुर्गाणि तरति महा-देव्याः प्रसादतः।

अर्ध-रात्रि में निरन्तर पाठ करने पर कुछ ही दिनों में अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं तथा पूर्ण शान्ति मिलती है। अथर्व-शीर्ष को चण्डी-पाठ के साथ प्रयोग में लाने से शीघ्र ही पराम्बा की कृपा होती है तथा देवी का सान्निध्य मिलता है। श्लोक १०में देवी के रूप का वर्णन है तथा आह्वान है—'प्राण-रूपी' देव-गणों ने जिस प्रकाशमान वैखरी-वाणी को उत्पन्न किया, जिसे तीनों लोकों में बोला जाता है, वह कामधेनु-वत् आनन्द-दायक, अन्न तथा जल एवं बल प्रदान करनेवाली वाग्-रूपिणी भगवती उत्तम स्तुति से सन्तुष्ट होकर हमारे समीप आये।'

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानां। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद, स दैवीं सम्पदमाप्नोति।

देवों को उत्तम हवि पहुंचाने की सामर्थ्य के साथ-साथ पितरों को दिये पिण्ड के रस को ग्रहण करते हुए, कर्म-काण्डियों के व्यापार की प्रत्याभूति (गारण्टी) स्वरूप यह महा-देवी साक्षिणी है, जहाँ कोई उसका विलोम साक्ष्य नहीं है।

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञान-रूपिणी। ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्य-साक्षिणी॥
यस्याः पर-तरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता। नमामि त्वां महा-देवीं महा-भय - विनाशिनीम्॥
महा-दुर्ग-प्रशमनीं महा-कारुण्य-रूपिणीम्॥

मन्त्रों की सामर्थ्य-शक्ति, शब्दों में ज्ञानाभास, ज्ञान में अतीतावस्था तथा उस महा-शून्य में अचर-चर उद्बोधन के अन्तराल में जो शून्य जागृत है, उस महा-सुरक्षा-चक्र सदा सर्वदा अनन्तानन्त विद्या के स्रोत-बिन्दु का साक्ष्य यदि कोई है, तो वह अनन्त-वीर्या पराम्बा शक्ति ही हैं, जो एकमात्र भोग-मोक्ष दोनों देने में समर्थ है। वह अनन्त है, सर्व-जयी है, अत्यन्त विशुद्धा विकार-रहिता शरण लेने योग्य है।

मन्त्रों में 'ह्रीं' एकाक्षर के सम्बन्ध में अथर्व-शीर्ष ने जो रहस्योद्घाटन किया है, वह पंचदशी श्रीविद्या का उद्भव है—

वियदीकार-संयुक्तं वीति-होत्र-समन्वितम्। अर्धेन्दु-लसितं देव्या बीजं सर्वार्थ-साधकम्॥

आकाश (ह) + ईकार (ई) + वीति-होत्र (र) + अर्धेन्दु (ँ) बीज = ह्रीं। यह बीज ब्रह्म-स्वरूप है, जिसका ध्यान चक्र-भेदन में समर्थ है, इससे योगी परमानन्द को पाते हैं। (शेष पृष्ठ ८ पर)

अन्तरराष्ट्रीय ज्योतिष तन्त्र अनुसन्धान सम्मेलन, कानपुर
में
'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल का निवेदन

श्वेतं श्वेत-विलेप-माल्य - वसनं वामेन रक्तोत्पलम्,
बिभ्रत्या प्रियया चोत्तरेण सहसाश्लिष्टं प्रसन्नाननम् ।
हस्ताभ्यामभयं वरं च दधतं शम्भु - स्वरूपं गुरुम्,
हाला-लोहित-लोचनोत्पल- युगं ध्याये शिरस्थं पदम् ।।

सबसे पहले मैं इस महद् आयोजन के संयोजक राजर्षि अतुल टण्डन जो को हार्दिक बधाई देना चाहता हूँ। बधाई देने का एक विशेष कारण है। वह यह कि लगभग पचास वर्षों से जो भगीरथ प्रयास प्रायः गुप्त रीति से भारत की रहस्यतम विद्या के उद्घाटन के लिए तीर्थराज प्रयाग में चलता आ रहा है, उसे पहचानने और मञ्च पर ले आने का प्रथम श्रेय आपको ही है । यह कार्य सम्पादित करने में आपने अपने पुरुषार्थ का जो अनूठा परिचय दिया है, उसकी कथा अलग ही है। इस सम्बन्ध में मैं केवल इतना ही कहूगा कि आज से ४४ वर्ष पूर्व सन् १९४२ में तीर्थराज प्रयाग के महा-कुम्भ के अवसर पर त्रिवेणी क्षेत्र में जिस भगीरथ प्रयास का श्रीगणेश हुआ था, उसके एकमात्र सूत्रधार आज इस आयोजन को अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित कर रहे हैं और यह सम्भव हुआ है राजर्षि टण्डन जी की कर्मठता से।

हमारे वे महान् सूत्रधार हैं प्रयाग उच्च न्यायालय के अवकाश-प्राप्त न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ जी काटजू, जो इस तन्त्र-सम्मेलन में विशिष्ट अध्यक्ष के रूप में हमारे मध्य विराजमान हैं। आप सम्प्रति विश्व हिन्दू परिषद् एवं अखिल भारतीय शाक्त-सम्मेलन के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते हुये राष्ट्र की अद्वितीय सेवा कर रहे हैं। इस प्रकार आपके परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह मैं अवश्य कहूँगा कि आपके आध्यात्मिक—साधक स्वरूप को जाननेवाले इने-गिने व्यक्ति ही होंगे। बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि परम गोपनीय शाक्त-साधना को प्रकाश में लाने का अभूत-पूर्व कार्य किस कौशल के साथ आपने सम्पन्न किया है। यही नहीं, विश्व-तन्त्र-संघ, जिसका केन्द्र भारतवर्ष में ही रहा है, उसका रहस्योद्घाटन ही आपने नहीं किया है, उसके अमेरिकी प्रभाग के एक दुर्लभ प्रकाशन को भी आप देश में ले आये हैं, जिसकी एक प्रति इस आयोजन के प्रदर्शनी-कक्ष में देखी जा सकती है। परम पूज्य श्रीमान् काटजू जी महोदय के कृतित्व का वर्णन करना अल्प समय में सम्भव नहीं है, अतः उनके प्रति अपनी आन्तरिक श्रद्धा समर्पित करते हुये मैं अपने प्रकृत विषय पर आता हूँ किन्तु उसके पूर्व इस महद् आयोजन का उद्घाटन करने पधारीं माननीया शिक्षा एवं संस्कृति राज्य मन्त्री महोदया श्रीमती सुशीला रोहतगी जी का हार्दिक अभिनन्दन करना मैं अपना परम पुनीत कर्तव्य मानता हूँ। आप महामना ब्रह्मर्षि पं० मदनमोहन मालवीय जी के परिवार से सम्बन्धित परम विदुषी महिला हैं। आपने इस महद् आयोजन का अपने कर-कमलों से उद्घाटन कर एक प्रकार से इस आयोजन की सफलता सुनिश्चित कर दी है। आपके स्वरूप में हमें भारतीय संस्कृति के अद्वितीय संरक्षक ब्रह्मर्षि मालवीय जी के ही दर्शन हो रहे हैं। इसके लिए एक बार मैं पुनः राजर्षि टण्डन जो को हार्दिक बधाई देना चाहूँगा क्योंकि यह उन्हीं का पुरुषार्थ है कि वासन्तिक नवरात्र के इस पुण्य अवसर पर हम साक्षात् देवी-स्वरूपा श्रीमती सुशीला जी का दर्शन लाभ कर रहे हैं।

शिक्षा एवं संस्कृति राज्य-मन्त्री महोदया ने अपने सन्देश में लिखा है कि 'मेरी आशा है कि यह सम्मेलन ज्योतिष व तन्त्र-विद्या के विज्ञान-सम्मत स्वरूप को विश्व के सम्मुख प्रकाशित करने में अपना योग-दान देगा।' इस सम्बन्ध में मेरा विनम्र निवेदन है कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि जितनी भी आर्ष विद्यायें हैं, वे पूर्णतया विज्ञान-सम्मत हैं किन्तु उनके इस स्वरूप के प्रकाशन के लिये यह आवश्यक है कि जिस प्रकार भौतिक विज्ञान के उत्कर्ष के लिये विविध प्रकार की प्रयोगशालाओं और यान्त्रिक उपकरणों आदि की सुविधाएँ भौतिक वैज्ञानिकों को शासन द्वारा उपलब्ध कराई जाती हैं, उसी प्रकार मन्त्र-तन्त्रादि के साधकों को शासन का सहयोग मिलना चाहिये। यदि ऐसा हो तो मन्त्र-विज्ञान में वह शक्ति है कि जिन परमाणु अस्त्रों से आज विश्व की मानवता त्रस्त है, वह अपने भण्डार-स्थलों में रखे-रखे हो स्तम्भित और ध्वस्त हो जायें। दुर्भाग्य की बात यह है कि सुविधाएँ मिलने के स्थान पर भारतीय साधकों को बाधाओं का ही सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिये केन्द्रीय संस्कृत संस्थानों में प्राचीन पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं किन्तु उन तक विरले साधक ही पहुँच सकते हैं। इन संस्थानों में मन्त्र-तन्त्र जैसे विषयों पर शोध-कार्य भी सम्पन्न होते हैं किन्तु शोध-कर्ताओं के मार्ग-दर्शक ही जब मन्त्र-तन्त्र-साधना के ज्ञान से शून्य हैं, तब शोध-कार्य कैसा होगा, यह सहज ही समझा जा सकता है। अस्तु, ये सब बातें शासन के विचार की हैं।

राजर्षि अतुल टण्डन जी का मुझे निर्देश है कि मैं आपके समक्ष कौल-धर्म और वाम-मार्ग के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करूँ। 'कौल-धर्म' वास्तव में शाक्त-धर्म का नामान्तर है। शाक्त-धर्म की साधना में सफल होकर जो साधक सर्वोच्च स्तर को प्राप्त कर लेता है, उसे 'कौल' कहते हैं। 'कौलात् पर-तरो नहि'—कौल से बढ़कर कोई नहीं। 'कौल' शब्द 'कुल' शब्द से बना है। 'कुल' का अर्थ है शक्ति और 'अकुल' का अर्थ है 'शिव'। कुल और अकुल—शक्ति और शिव का मिलन कराने की क्रिया ही कौल-साधना है। मानव शरीर के मूलाधार चक्र में विराजमान कुण्डलिनी ही शक्ति है और उसे सुषुम्णा के मार्ग से ले जाकर सहस्रार में स्थित शिव से मिलाना पड़ता है। संक्षेप में कौल-धर्म की साधना का सूक्ष्म सार यही है, जिसे बड़े-बड़े योगी भी हृदयङ्गम नहीं कर पाते—

'कौलो धर्मो परम-गहनो, योगिनामप्यगम्यः।'

किन्तु 'कौल-धर्म' का स्थूल सार अधिक बोध-गम्य और उपयोगी है। प्रायः लोग सूक्ष्म तत्त्व के पीछे पड़े रहते हैं, स्थूल तत्त्व की उपेक्षा करते हैं, फलतः उनके हाथ कुछ नहीं लगता। 'कुल' शब्द का स्थूल अर्थ है स्त्री, परिवार, कुटुम्ब। स्त्री से ही परिवार का गठन होता है। अतः कौल-धर्म में स्त्री को परम पूजनीया माना ही नहीं जाता, उसी की पूजा की जाती है। कुमारी-पूजा, सुवासिनी-पूजा, शक्ति-पूजा का विधान किसी से छिपा नहीं है। उसके साथ ही बालकों का वटुक, गणेश आदि के रूप में पूजन करने का विधान है। इस प्रकार अपने कुल के—अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य की पूजा कर सबको देवता-रूप में समझना पड़ता है और स्वयं अपने को भी प्राणायाम, विविध न्यासों, भूत-शुद्धि, तत्त्व-शुद्धि आदि द्वारा शुद्ध बनाकर देव-रूप—शिव-रूप बनाना पड़ता है। इस प्रकार 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'—देवता बनकर देव-पूजा करने का अधिकार मिलता है। देवता की पूजा में केवल देवता का पूजन करने से काम नहीं चलता, उस देवता के भी कुल या परिवार के प्रत्येक सदस्य की पूजा करनी होती है। इन सदस्यों को 'आवरण - देवता' के नाम से साधक लोग जानते हैं।

कहने का आशय यह है कि साधक को अपने कुल या परिवार की पूजा करते हुए अपने देवता

का उसके कुल या परिवार सहित पूजन करना होता है। इस प्रकार कुल-पूजा की प्रधानता को मानने से 'कौल' नाम की सार्थकता स्पष्ट होती है।

अब बात आती है 'वाम-मार्ग' की। वाम-मार्ग के सम्बन्ध में बहुत सी भ्रान्तियाँ प्रचलित रही हैं। इसी से 'चण्डी' पत्रिका के प्रवर्तक प्रातः-स्मरणीय पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी ने सन् १९४० के पूर्व सर्व-प्रथम 'वाम-मार्ग' नाम से एक पुस्तक ही लिख कर प्रकाशित कराई थी, जिसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। वाम-मार्ग की बात करनेवाले प्रायः सुनी-सुनाई बातों पर ध्यान देते हैं। वे यह जानने का प्रयास नहीं करते कि शाक्त-धर्म में मनुष्यों को तीन भावों के अन्तर्गत श्रेणी-बद्ध किया गया है। वे तीन भाव हैं—पशु-भाव, वीर-भाव और दिव्य भाव।

'पाश-बद्धो पशुः प्रोक्तः पाश-मुक्तः सदाशिवः।'

घृणा, शङ्का, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील और जाति—ये आठ पाश हैं। इन पाशों से जो व्यक्ति बँधे हैं, उन्हें पशु माना गया है और उनके लिये दक्षिणाचार निर्दिष्ट किया गया है। 'आचारो प्रथमः धर्मः'—आचार का पालन करना धर्म की पहली सीढ़ी है। दक्षिणाचार के नियमों का पालन करते हुये जब इतनी शक्ति साधक में आ जाती है कि वह उक्त आठ पाशों को तोड़ सके, तब उसे 'वीर-भाव' में प्रवेश करने का अधिकार मिलता है और तब उसे वामाचार का पालन करना होता है। यही वामाचार 'वाम-मार्ग' नाम से प्रसिद्ध है। इस आचार में आठ पाशों को काटने के लिये पञ्च-मकारों को साधन-रूप में स्वीकार किया गया है। इन्हीं मकारों के वैज्ञानिक रहस्य को न समझने के कारण 'वाम-मार्ग' के सम्बन्ध में लोगों में तरह-तरह के भ्रम फैले हुये हैं।

वास्तव में पाँचों मकार पञ्च-महाभूतों के प्रतिनिधि हैं, जिनसे मानव शरीर बना हुआ है। अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु और आकाश—इन्हीं पाँचों महा-भूतों से यह सारी सृष्टि बनी हुई है। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों—छिति जल पावक गगन समीरा, पञ्च तत्त्व यहरचित सरीरा—के द्वारा प्रायः सभी भारत-वासी इस तथ्य से परिचित हैं किन्तु इन तत्वों की अनुभूति करते हुये इनकी शक्ति से अपने शरीर के शोधन करने और उसे शक्ति-सम्पन्न बनाने की वैज्ञानिक विधि एकमात्र तन्त्रोक्त साधन-पद्धति में ही उपलब्ध है, अन्यत्र कहीं नहीं।

उदाहरण के लिये प्रथम मकार 'मद्य' अग्नि-तत्व है। जैसे अग्नि का गुण जलाने का—उद्दीपन का है, वैसे ही मद्य में यह गुण है कि जिस व्यक्ति में जो गुण होता है, उसे यह उद्दीप्त कर देता है। इसी से तन्त्र में यह निर्देश है कि 'ब्राह्मणस्तु सदा पेयं क्षत्रियस्तु रणागमे' अर्थात् सतोगुण-प्रधान व्यक्तियों को सदा मद्य-पान करना चाहिये किन्तु रजोगुण-प्रधान व्यक्तियों को केवल संघर्ष-काल में इसे ग्रहण करना चाहिये। साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि जिस प्रकार पञ्च-महाभूत परस्पर सम्मिलित होकर सृष्टि-रूप में आते हैं, उसी प्रकार पञ्च-मकारों का एकत्र रहना भी आवश्यक है। मद्य के उग्रांश को शान्त करने की क्षमता पृथ्वी-तत्वात्मक दूसरे मकार अर्थात् 'मांस' में है। जिस प्रकार जलती हुई अग्नि में मिट्टी डाल देने से वह मन्द होकर बुझ जाती है, उसी प्रकार मांस-खण्ड के साथ मद्य ग्रहण करने से मद्य की उग्रता हानि नहीं पहुँचाती अपितु दोनों तत्वों के संयोग से अपूर्व शक्ति की प्राप्ति होती है। इसके सिवा इन तत्वों के ग्रहण करने में मात्रा का ध्यान रखना भी परमावश्यक है। तन्त्रादेश है कि—

'यावन्न चलते दृष्टिः, यावन्न चलते मनः तावत् पानं प्रकुर्वीत।
अतः परं पशु-पानमतः, पशु-पान-रतो कौलोऽपि नरकं व्रजेत्॥

अर्थात् जब तक दृष्टि और मन में चंचलता उत्पन्न न हो, तभी तक मद्य पान करना चाहिये। इससे अधिक मात्रा में पान करना पशु-पान कहलाता है और ऐसा पान करनेवाला सिद्ध पुरुष भी पतित हो जाता है।

तीसरा मकार 'मत्स्य' जल-तत्व का प्रतिनिधित्व करता है और चौथा मकार 'मुद्रा'—अन्न-मय पदार्थ—वायु-तत्व की शक्ति देता है।

इस प्रकार ये चार मकार ग्रहण करने से साधना में सहायक होते हैं किन्तु पञ्चम मकार आकाश-तत्व का प्रतिनिधि है। जिस प्रकार आकाश या शून्य में प्रविष्ट होनेवाले का नाम-शेष हो जाता है, उसी प्रकार पञ्चम तत्त्व का सेवन करनेवाला शक्ति-हीन होकर सर्वनाश को प्राप्त होता है। इसी से तन्त्र का निर्देश है कि 'पञ्चमे पूजनं कुर्यात्' अर्थात् स्त्री का पूजन कर उसका प्रसाद ग्रहण करना चाहिये।

यह है संक्षेप में वाम-मार्ग की गोपनीय साधना का वास्तविक रहस्य। इसी साधना के द्वारा साधक घृणा आदि अष्ट-पाशों से छूटकर दिव्य-भाव में स्थित हो जाता है और उसे 'कौल' की सम्मानित उपाधि से विभूषित माना जाता है।

जैसा कि मैंने प्रारम्भ में निवेदन किया है कि कौल-धर्म का रहस्य बड़ा गम्भीर है, अच्छे-अच्छे योगी भी उसे हृदयङ्गम नहीं कर पाते। फिर मैं तो सर्वथा अज्ञ—इस पवित्र धर्म का एक सामान्य सेवक मात्र हूँ। ऐसी दशा में मैंने जो कुछ निवेदन किया है, उसमें जो कुछ सार की बात जान पड़े, उसे श्रोता-गण ग्रहण करने की कृपा करें। त्रुटियों के लिये विद्वज्जनों से क्षमा-प्रार्थी हूँ। वन्दे मातरम्॥

गुप्तावतार बाबाश्री

कृत

मुमुक्षु मार्ग

(रहस्योद्घाटन खण्ड)

'मन्त्र' का अर्थ, ॐ का अर्थ, 'राम' का अर्थ, भ० कृष्ण के मन्त्र का अर्थ, गायत्री का अर्थ, नवार्ण मन्त्र का अर्थ, मृत्युञ्जय मन्त्र और 'स्त्रीं' का अर्थ, श्री-यन्त्र की महिमा, 'त्रि-कूटों' का अर्थ, 'पादुका' की महिमा, भ० शिव के अनन्त भाव का वर्णन, कुण्डलिनी-रहस्य, योग-रहस्य, पूजा-रहस्य आदि महत्व-पूर्ण विषयों की जानकारी के लिये इस अनूठी कृति को पढ़िये। मूल्य : १५-००

हिन्दू-धर्म-कोश

लेखक—डा० राजबली पाण्डेय

अकारादि क्रम से हिन्दू-धर्म सम्बन्धी मुख्य-मुख्य ज्ञातव्य विषयों का प्रामाणिक विवरण इसमें दिया गया है। पृष्ठ-संख्या १०७०...४५-०० रु०।

दक्षिण भारत में कामाख्या योनि-पीठ

परम पूज्य श्रीस्वामी त्र्यम्बकेश्वरानन्द, विज्ञान आश्रम, इन्दौर (म० प्र०)

[आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम् नगर में **'श्रीविद्या ट्रस्ट'** नामक एक संस्था १८-७४-३८ सुपर बाजार में पिछले पाँच वर्षों से स्थापित है। इस ट्रस्ट के संस्थापक डा० एन० पी० शास्त्री के अनुरोध पर प्रस्तुत लेख के लेखक पूज्य स्वामी 'देवी-पुरम्' में जाकर ठहरे और वहाँ लगभग डेढ़ मास अपनी साधना की। हमारे आग्रह पर स्वामी जी ने यह परिचयात्मक लेख भेजने की कृपा की है। आशा है कि 'चण्डी' के पाठक बन्धु इसे पढ़कर प्रसन्न और पुलकित होंगे।––सं०]

विशाखापत्तनम् जनपद के 'देवी-पुरं' में एक अनुपम देवी-मन्दिर का निर्माण-कार्य गुरुवार २१ मार्च, १९८६ के प्रातः ३-४५ बजे से प्रारम्भ होकर चल रहा है। इस मन्दिर की आधार-शिला १६ अक्टूबर, १९८३ को विजयादशमी के पुण्य काल में प्रतिष्ठित की गई थी। प्रस्तावित मन्दिर का आकार 'मेरु' (पिरामिड) जैसा होगा और इसके शीर्ष (ऐपेक्स) पर श्रीराज-राजेश्वरी की प्रतिष्ठा की जायगी। निम्न खण्ड के सहित इस मन्दिर के कुल छः खण्ड होंगे, जिन्हें १०८ से अधिक आवरण-देवताओं की प्रतिमायें सुशोभित करेंगी। शीर्ष का छत्र होगा विस्तृत खुला हुआ आकाश! इस प्रकार के अद्भुत मन्दिर के निर्माण की आकांक्षा भारत एवं तिब्बत के अनेक महात्माओं की दीर्घ काल से रही है। इसी आकांक्षा की पूर्ति के लिए डा० एन०पी० शास्त्री ने **'श्रीविद्या ट्रस्ट'** की स्थापना की।

'देवी-पुरं'-योजना के पुरस्कर्ता डा० शास्त्री 'टाटा इंस्टीट्यूट आफ फण्डामेण्टल रिसर्च' में २५ वर्षों तक रिसर्च साइण्टिस्ट के रूप में कार्यरत रह चुके हैं। दो वर्षों तक वे जाम्बिया यूनिवर्सिटी में भौतिक विज्ञान (फिजिक्स) के प्रोफेसर भी रहे हैं। आध्यात्मिक साधना के आकर्षण में वैज्ञानिक भूमिका त्याग कर अगस्त १९८२ में उन्होंने उक्त **'श्रीविद्या ट्रस्ट'** को पजीकृत कराया। इस ट्रस्ट का पंजीकरण ह्यौस्टन (यू० एस० ए०) और टोरण्टो (कनाडा) में भी कराया गया है और वाशिंगटन, न्यूयार्क, रोशेस्टर, ऐम्हर्स्ट नगरों में इसको शाखायें हैं। विगत वर्षों में 'ट्रस्ट' द्वारा किए गए कार्यों में उल्लेखनीय हैं––

१ जाम्बिया के लुसाका में काफू के मन्दिरों में प्राण-प्रतिष्ठा, १९८० में।

२ सिंहाचलम्, विशाखापत्तनम् में त्रिपुर-सुन्दरी की प्राण-प्रतिष्ठा, १९८२ में।

३ विजाग पोर्ट-ट्रस्ट में दुर्गा की प्राण-प्रतिष्ठा, १९८२ में।

४ हाउजिंग बोर्ड कालोनी में अम्बिका को प्राण-प्रतिष्ठा, १९८२ में।

५ एम० वी० पी० कालोनी में 'सावित्री-पीठम्' की स्थापना, १९८३ में।

६ देवी-यागम् १९८३ में। इसी याग से 'देवी-पुरम्' योजना का सूत्रपात हुआ। यह याग ब्रह्मर्षि वामकोटि कृष्णयाजी के निर्देशन में सम्पन्न किया गया। १६ दिनों तक प्रतिदिन सहस्र-चण्डी हवन, कोटि कुंकुमार्चन, विविध पूजायें, अभिषेक आदि जैसे अनुष्ठान होते रहे। लगभग सवा लाख रुपये खर्च हुए।

इसी याग की अवधि में एक साधक श्री पी० वेङ्कट राव ने तीन एकड़ भूमि दान में देने का प्रस्ताव किया। यह भू-भाग विशाखापत्तनम् बन्दरगाह से लगभग ३५ किलोमीटर दूर

अनेक पहाड़ियों के मध्य स्थित है। **'श्रीविद्या ट्रस्ट'** के तत्त्वावधान में धर्म-निष्ठ साधकों की एक बस्ती मुख्य मन्दिर के चारों ओर अस्तित्व में आने लगी। मुख्य देवी-मन्दिर के सिवा वहाँ शिव और योनि-रूपा कामाख्या के भी मन्दिर हैं। कालान्तर में यह **'देवी-पुरम्'** एक अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षणिक केन्द्र का रूप ग्रहण कर लेगा, जहाँ ज्ञान-विज्ञान एवं अध्यात्म दोनों प्रकार का प्रशिक्षण जिज्ञासुओं को उनकी योग्यता एवं अधिकार के अनुरूप सुलभ होगा।

मां कामाख्या का आविर्भाव

शास्त्री जी जब कभी दान में प्राप्त उक्त भू-भाग की ओर जाते, तो वे वहाँ दो विशाल चट्टानों के मध्य विद्यमान एक त्रिकोणाकार गर्त्त के सामने बैठकर ध्यान किया करते थे। एक बार उन्हें सुनाई पड़ा कि **'मैं यहाँ हूँ'** और इसी के बाद उन्हें कई स्वप्न दिखाई दिए तथा अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ हुईं। उन सबके आधार पर वे मां की उपस्थिति का प्रमाण खोजने लगे। फलस्वरूप उन्हें वहीं एक प्राचीन धातु-निर्मित मेरु-यन्त्र की प्राप्ति हुई। बाद में जङ्घा-समान चट्टानों के मध्य में स्थित उसी त्रिकोणाकार गर्त्त को सुडौल रूप देकर उसे **'योनि-रूपा कामाख्या पीठ'** नाम से विभूषित किया गया।

अनुभव में यह आया कि उक्त पीठ में निस्सन्तानों की इच्छा-पूर्ति करने की दिव्य शक्ति विद्यमान है और शास्त्री जी ने सन्तान-हीन दम्पतियों के लिए उपासना-पद्धति निर्धारित कर दी, जिसके फलस्वरूप दैहिक या दैविक बाधा दूर होकर उन्हें इच्छित सन्तान की प्राप्ति हो सकती है। दक्षिण के इस **'कामाख्या योनि पीठ'** के सम्बन्ध में विशेष सूचना डा० एन० पी० शास्त्री, पो० अम्मुला पालेम, द्वारा निदानम् डोड्डी, अनाका पाल्ले-५ (आंध्र प्रदेश) से मिल सकती है।

(पृष्ठ २ का शेषांश)

विश्व-मोहिनी पंचदशी विद्या अथर्वशीर्ष में वर्णित है। यह विद्या गुरु-गम्य होने के कारण गुप्त रही है। शास्त्र-परम्परा के रूप में इस विद्या को पुनर्जागृत करके श्री-लाभ के लिये प्रचारित करना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसी विद्या के बल-बूते पर ही हमारी संस्कृति को विश्व में शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ।

कामो योनिः कमला वज्र-पाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः। पुनर्गुहा सकला मायया च, पुरूच्यैषा विश्व-मातादि-विद्योम् एषऽऽत्म-शक्तिः। एषा विश्व-मोहिनी। पाशांकुश-धनुर्वाण-धरा। एषा श्री-महा-विद्या। य एवं वेद, स शोकं तरति।

काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्र-पाणि (ल), गुहा (ह्रीं), हसा (ह-स), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनर्गुहा (ह्रीं), सकला (स-क-ल), माया (ह्रीं) अर्थात्—**कएईल-ह्रीं हसकहल-ह्रीं सकल-ह्रीं।**

मन्त्र-कोष, भाग २ में पृष्ठ १५० पर पंचदशी त्रिकूटा कामराज विद्या के रूप में यह मंत्र दिया है। वहीं पृष्ठ १४९ में 'कएईल-ह्रीं' को मूलाधार चक्र का, 'हसकहल-ह्रीं' को अनाहत का तथा 'सकल-ह्रीं' को आज्ञा-चक्र का भेदक बताया है। पृष्ठ १५४ में अविलम्ब-सिद्धि के लिए इस मंत्र को सम्पुटित करना अत्यन्त प्रभावी कहा गया है।

कामो माया रमा बाला त्रिकूटा स्त्री भगांकुशौ, काली काम-कला कूर्चः सर्वादौ प्रणवः प्रिये! श्री महा-षोडशीयं च या ख्याता भुवन-त्रये, ज्ञानेन मृत्युहा विद्या सर्वाम्नायैर्नमस्कृता।

ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः कएईल-ह्रीं हसकहल-ह्रीं सकल-ह्रीं स्त्रीं ऐं क्रों क्रीं क्लीं हूं।

उपर्युक्त मंत्र का चण्डी-पाठ के मंत्रों के साथ सम्पुट करने से अनुभूति-सिद्धि मिल सकती है।

एक परिचय :

'विद्या-वाचस्पति' पं० श्रीकण्ठ शर्मा चक्रपाणि

डॉ० ऋषिकुमार चक्रपाणि, २७०७।२ गुरु-निकेतन, चौक, अमृतसर (पंजाब)—१४३००१

भारत-भूमि पुण्य-भूमि है, देव-भूमि है। इसके कण-कण में देवी-देवताओं का निवास है। इसी भूमि पर सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। सभ्यता-संस्कृति यहीं से पृथ्वी पर फैली। हमारे पुण्य-श्लोक महर्षियों ने अपने दिव्य-ज्ञान एवं साधना द्वारा पुराण-पुरुष की वाणी को प्रत्यक्ष करके चार वेदों के रूप में लिपि-बद्ध किया।

वेद के छह अङ्गों में ज्योतिष का महत्व-पूर्ण स्थान है। इसके अनुसार 'कुरु-क्षेत्र' भूमध्य-रेखा अथवा भूगोल का केन्द्र-विन्दु है। इसी कुरु-क्षेत्र पुण्य-भूमि पर सरस्वती नदी के तट पर वेद, वेदांग, पौराणिक-साहित्य की रचना हुई। कुरु-क्षेत्र से १७ मील दूर 'पृथूदक' नाम का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। इसे आजकल 'पिहोवा' कहा जाता है। इसी स्थान पर सरस्वती नदी के पावन तट पर '**ब्रह्म-योनि**' नामक स्थान है, जहाँ श्री नारायण के नाभि-कमल से श्रीब्रह्मा जी का आविर्भाव हुआ था। मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गत श्री दुर्गा-सप्तशती के प्रथम-चरित में वर्णित कथा के अनुसार इसी स्थान पर श्रीविष्णु-कर्ण-मलोद्भूत मधु-कैटभ राक्षस-द्वय का वध भी हुआ था। पौराणिक विवरण के अनुसार जब ब्रह्माजी ने योग-माया की स्तुति की थी, तब भगवती द्वारा भगवान् विष्णु के जागने पर मधु-कैटभ से युद्ध हुआ।

इस कथा में वर्णित स्थान का विवरण लोक-प्रसिद्ध नहीं है परन्तु इस 'पिहोवा' नाम के स्थान पर ही भगवती योग-माया का प्रथम प्राकट्य हुआ था तथा भगवती ने यहाँ अपना आवास किया था। आज भी इस स्थान पर भगवती 'श्री बाला-त्रिपुर-सुन्दरी' का मन्दिर विद्यमान है, जिसमें पिण्डिका-रूप में स्वयम्भू-विग्रह प्रत्यक्ष है। इस पिण्डिका पर प्राकृतिक रचना के रूप में भगवती के प्रतीक श्री-चक्र के अद्भुत प्रत्यक्ष दर्शन हैं। इस श्रीचक्र का रेखाङ्कन स्वयं में अद्भुत है। इस स्थान पर अनादिकाल से ही असंख्य साधकों ने साधना करके सफलता के चरम-सोपान तक यात्राएँ की हैं। यह दुःख का विषय है कि यह आद्यतम शाक्त-पीठ अभी तक विस्मृत-प्राय ही है। अस्तु।

इसी पावन शाक्त पीठ-स्थली 'पिहोवा' नाम के स्थान पर लगभग ३०० वर्ष पूर्व राजस्थान के प्रसिद्ध, श्रीचक्र के परम उपासक '**श्रीवराहाचार्य**' जी पधारे थे। कुरु-क्षेत्र की तीर्थ-यात्रा के बाद जाते हुए, वे अपने साथ एक ब्राह्मण-वटु को ले गए तथा पूरे ३० वर्ष अपने यहाँ रख कर शिक्षा-दीक्षा देकर संस्कृत का पारश्व-विद्वान् बनाकर वापिस भेज दिया। इन विद्वान् का नाम था 'श्रीगुलजारीलाल मिश्र'। इन्हें जो श्रीविद्या, गुरु-विद्या के रूप में प्राप्त हुई, वह श्रीविद्या इस वंश की थाती बन गई। कौण्डिन्य-गोत्रीय यजुर्वेद माध्यंदिन-शाखीय चक्र-पाणि-जातीय इस ब्राह्मण कुल की परम्परा में उत्तरोत्तर विद्या एवं लक्ष्मी की वृद्धि ही होती गई। इसी कुल में से एक पूर्व-पुरुष ने अमृतसर में गद्दी की स्थापना की तथा मारवाड़ी समाज में यज्ञोपवीत-परम्परा एवं आस्तिकता का प्रचलन किया।

इसी कुल में लगभग १०० वर्ष पूर्व श्रीविद्या के उपासक एक अनिर्वचनीय शाक्त-विभूति का प्राकट्य हुआ। उनका शुभ नाम '**पं० श्री हरिप्रसाद**' जी था। इन्होंने अपने जीवन में जिन दिव्य शक्ति-सम्पन्न साधनाओं की प्राप्ति की, वह कल्पनातीत है। इस भू-क्षेत्र में आज भी एक किंवदन्ती के रूप में

उनका नाम स्मरण किया जाता है। इस विभूति से अगली पीढ़ी में भगवती दुर्गा के परम उपासक एक दिव्य आत्मा का जन्म हुआ, जिनका नाम '**पं० श्री गजानन शर्मा**' था। इन्होंने शाक्त-पूजा के साथ अग्नि-पूजा को विचित्र रूप से समन्वित किया। इनके आशीर्वाद मात्र से पुत्र-रहितों को दीर्घ-जीवि पुत्र प्राप्त हुए। इस वंश में अन्न-दान आदि के साथ-साथ विद्या-दान आदि के रूप में दिव्य परम्पराएँ रहीं, जो आज भी यथा-कथंचित् जीवित हैं। सम्पूर्ण उत्तर भारत, विशेषतः पर्वतीय क्षेत्रों में असंख्य शिष्य आज भी विद्यमान हैं। विक्रमी संवत २०३० में पुण्य-श्लोक पं० श्रीगजानन जी ने भौतिक-देह का त्याग किया।

इन्हीं के यहाँ ज्येष्ठ पुत्र के रूप में मेरे पूज्य पितृश्री **पं० श्रीकण्ठ शर्माजी** का जन्म हुआ, जिन्होंने अपने जीवन में श्रीविद्या-साधना को नए आयाम दिये हैं। यदि इसे अतिशयोक्ति न समझें, तो सम्भवतया वर्तमान-काल में भारत के मूर्धन्य एवं उंगलियों पर गिने जाने लायक श्रीविद्या के उपासकों में ये भी एक हैं। इनका ही परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

विक्रमी सं० १९७२ ज्येष्ठ शुक्ल गङ्गा-दशमी को परम शाक्त - विभूति श्रीहरिप्रसाद जी का शरीर शान्त हुआ। दशाह-शुद्धि के दिन जब गृह-शुद्धि की जा रही थी, एक विशालकाय दिगम्बर अवधूत जैसे साधु ने द्वार पर आकर दिवङ्गत आत्मा का नाम लेते हुए 'भिक्षां देहि' की अलख जगाई। शोकाकुल प्रपितामही ने उत्तर दिया—'ओ मोडे (मुंडिल), किसे पुकारता है? वह तो ज्योति-लीन हो चुके! अब कहाँ?'

उस दिगम्बर ने मेघ-गर्जना सदृश स्वर में कहा—'क्यों भूलते हो? वह आत्मा तो तुम्हारे घर में आ रही है।' इतना कहते-कहते वह दिगम्बर वहीं हवा में विलीन हो गया। इस घटना को उस समय दशाह-शुद्धि पर उपस्थित सारे समाज एवं कुल-जनों ने प्रत्यक्ष देखा था।

पिताश्री १९८७ विक्रमी सम्वत् में श्री भैरव-स्वरूप स्व० श्री हरिदत्त जी त्रिवेदी को शरण में 'न्याय-पंचवाद-स्वाध्याय' के बहाने पहुंचे। स्वाध्याय पूर्ण होने के बाद पूज्य गुरुदेव से परिचर्या-मार्ग की दीक्षा की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकृत हुई तथा दीक्षा मिली। तीन वर्ष की कठोर साधना एवं तपस्या के बाद निशार्ध की तुरीय संध्यावाली अर्चना में पराम्बा के दर्शनों की पुण्य-घड़ी (क्षण) गुरु-कृपा से आ पहुँची। पूज्य पितृ श्री के शब्दों में—

'क्या अनुपम आभा थी! अवर्णनीय है! रक्ताम्बरा, मणि-गण-खचित मुकुटालंकृत भाल, धम्मिल्ल चन्द्र-कला-युक्त चतुर्भुजा, स्मित-वदना, कोटि-चन्द्र-सुशीतला, त्रि-नयना मा भैरवी मानों—बालार्क-मण्डलाभासां चतुर्बाहु-त्रिलोचनां पाशांकुश-वराभीतीर्धारयंतीं शिवां भजे—प्रत्यक्ष हो गया हो। जगदम्बा के दो हाथों पर द्राक्षा-सुधा से परि-पूर्ण दो कलशों में से उछल-उछल कर द्राक्षा-सुधा मानों बाहर गिर रही हो। स्मयमान-मुखाम्बुजा कारुण्य - कटाक्ष से संकेत कर बोल उठी—'पुत्र, सुधा ग्रहण करो, आज तुम पूर्ण हुए।' परन्तु स्व-कुलागत पितृ-परम्परा में दक्षिण-मार्गावलम्बी होने से विवशता-वश, माँ का आदेश बारम्बार परीक्षा किये जाने पर भी, नत-मस्तक होकर विवशता प्रकट करते हुए क्षमा-प्रार्थना की। मां मुस्कराई और जागृत-स्थिति में वह अपूर्व विद्युत् घनावली में विलीन हो गई तथा मैं रोमांचित हो उठा।'

अगली प्रातः नित्य की तरह ही पूज्य पिता जी जब अपने पूज्य गुरु-देव श्री त्रिवेदी जी के चरणों में पहुँचे, तो पूज्य गुरु-देव के नेत्रों से उज्ज्वल-ज्योतिःरश्मियाँ बिखरती देखीं। अचानक वे बोल उठे—'पुत्र, तू धन्य है। रात्रि के परीक्षण में पूरे उतरे हो। मां ने गुरु-परम्परा से ही परीक्षा ली थी। किन्तु हमारे भाई (अर्थात् पूज्य पितृश्री के पिता श्री गजानन जी महाराज) वामोपासना में नहीं

हैं, और तुमने उस 'कुल'-परम्परा का निर्वाह कर उदाहरण प्रस्तुत किया है। बैठो, आज ही पूर्णाभिषेक सम्पन्न होगा।' चरणों में बिठाकर भ्रू-मध्य में आज्ञा-चक्र पर अंगुष्ठ, सहस्रार पर अनामिकाग्र स्थापित कर वैध-दीक्षा क्रम से पराम्बा की चिन्मयी मूर्ति आशीर्वाद देकर धरोहर बना दी।

पूज्य पितृश्री केवल साधना के क्षेत्र में ही नहीं, विद्या एवं पाण्डित्य के क्षेत्र में भी प्रमाण-पुरुष सिद्ध हुए हैं। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय की संस्तुति पर महामहिम राष्ट्रपति ने 'विद्या-वाचस्पति' उपाधि प्रदान की। समस्त उत्तर भारत विशेषतः दिल्ली तक के भाग में जब कभी भी सनातन-धर्म-सम्बद्ध विवादों पर निर्णयात्मक सम्मेलन हुए तथा होते हैं, तब पूज्य पितृश्री की संस्तुति ही अंतिम निर्णय होती है। अनन्तश्री-विभूषित ब्रह्म-लीन श्री करपात्री जी का मित्र-वत् गुरु-भाव-पूर्ण आशीर्वाद पूज्य पितृश्री को प्राप्त रहा है। घर पर रहते हुए प्रातः से मध्याह्न तक परिचर्या, कुछ देर विश्राम, अपराह्न में गृहागत शिष्यों को विद्या-दान, तत्पश्चात् गृहस्थ के कार्य, रात्रि में पुनः नैश आराधन आदि चलते रहते हैं। सत्तर वर्ष की आयु में उनकी कर्मठता एक अनुकरणीय दृश्य प्रस्तुत करती है।

पुत्र होने के नाते मेरे इस लेख को सम्भव है, कुछ अतिशयोक्ति-पूर्ण समझ लिया जाय, परन्तु जीवन में अनेक घटनाएँ आती हैं और फिर वे स्वप्न हो जाती हैं। सच्चाई यह है कि पूज्य पितृश्री के जीवन में अब केवल वन्दनीय 'गुरु+परमगुरु+परात्पर गुरु+परमेष्ठी गुरुदेव'—चारों की अनुकम्पा पराम्बा की परिचर्या के परमानन्द के रूप में ब्रह्म-सुख का परमानन्द दे रही है।

भैरव-सर्वस्व

श्री पीताम्बरा-पीठ द्वारा प्रकाशित २८० पृष्ठों का यह अनूठा ग्रन्थ यथा नाम तथैव है। भगवान् बटुक भैरव, काल-भैरव आदि विविध भैरव-स्वरूपों के सम्बन्ध में प्रायः समस्त ज्ञातव्य विषय इसमें संगृहीत हैं। सबसे बढ़कर बात यह कि इसमें १ भगवान् बटुक भैरव (पीठ-प्रतिमा), २ बटुक भैरव (अष्ट-भुजी), ३ बटुक भैरव (सात्विक), ४ बटुक भैरव (राजस), ५ बटुक भैरव (तामस), ६ काल-भैरव, ७ महाकाल भैरव, ८ श्वेत भैरव—ये आठ रंगीन चित्र दिये गये हैं, जो अभूतपूर्व हैं। आवरण-पृष्ठ पर स्वर्णाकर्षण भैरव का आकर्षक चित्र है। इनके अतिरिक्त पूजन-सम्बन्धी विविध यन्त्रों के रेखा-चित्र भी दिये हैं। निस्सन्देह इस पुस्तक से श्री भैरवोपासना में साधकों को बड़ी सहायता मिलेगी। लेखक हैं पं० राधारमण दूर्वार, शास्त्री। मूल्य २१ रु० मात्र।

धर्मशास्त्र का इतिहास (पांच भागों में)

'भारत-रत्न' म० म० डा० पाण्डुरंग वामन काणे की यह ग्रन्थमाला बड़ी लोक-प्रिय रही है। यह इसका तीसरा संस्करण है। इसके पाँच भागों के मुख्य विषय इस प्रकार हैं—

१ प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय धर्म तथा लोक-विधियाँ, २ प्रायश्चित्त, ३ कर्म-विपाक, ४ अन्त्यकर्म, ५ अशौच, ६ शुद्धि, ७ श्राद्ध, ८ तीर्थ-प्रकरण, ९ व्रत, १० उत्सव, ११ काल, १२ पञ्चाङ्ग १३ शान्ति, १४ पुराण-अनुशीलन, १५ विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रकाश में धर्म-शास्त्र की रचना।

पाँच भागों का कुल मूल्य २०५-०० रु०। 'चण्डी' सदस्यों के लिये १८०-०० रु०

तत्त्व-साधना

श्री बदनसिंह, रायभा, आगरा (उ० प्र०)

ब्रह्म और माया अथवा शिव और शक्ति दो तत्व नहीं हैं। 'शिव+शक्ति' अथवा चिच्छक्ति एक ही परमतत्व का नाम है। उसके दो रूप हैं—एक वह, जो हमारा तथा संसार के पदार्थों का 'आत्मा' रूप है; दूसरा वह रूप है, जो दृश्यमान् है और नाना विकारों का संग्रह है। गीता में भी कहा है कि परम तत्व से सभी पदार्थों का उद्‌गम है और वह सभी पदार्थों में व्याप्त है।

सदैव एक-रस, निर्विकार और अखण्ड रहनेवाले तथा विकारों के साक्षीभूत इस आत्मा के दर्शन करना ही मानव-जीवन का चरमोत्कर्ष है। अतः शाक्त-साधना का भी उद्देश्य उस परम पद की ही प्राप्ति है। उस परम पद की प्राप्ति हेतु उद्यम करना होता है क्योंकि यह आत्मा दुर्बल को नहीं मिलता। बल तपस्या से होता है। तपस्या का अर्थ केवल शरीर-सुख का त्याग ही नहीं अपितु किसी ऊँचे, अच्छे उद्देश्य से दृढ़ सङ्कल्प से सदा भीतर (दत्त-चित्त) तपते रहना, उसके साधन में भी दत्त-चित्त रहना है। केवल शास्त्र पढ़ते रहना या ज्ञान का केवल संग्रह करते रहना ही पर्याप्त नहीं। उसके साथ तदनुसारिणी सदिच्छा और सत्क्रिया का होना भी आवश्यक है। भगवान् श्रीराम के विषय में गोस्वामी जी ने कहा है—

पुनि हरि हेत करन तप लागे। बारि अहार मूल फल त्यागे॥

'शक्ति-साधना' तान्त्रिक साधना है। यह साधना तभी सफल होती है, जब साधक पवित्रता, नम्रता, श्रद्धा, उदारता आदि गुणों से सम्पन्न होकर किसी गुरु के निर्देशन में अभ्यास करे। 'तन्त्र' एक गुप्त विद्या है, जो पुस्तकों से नहीं, आचार्यों और गुरुओं के सत्सङ्ग से प्राप्त होती है। इस साधना में मन की दुर्बलता को समाप्त करना आवश्यक है। मन की दुर्बलता को मिटाकर उसे शिव-सङ्कल्प-मय बनाने तथा चिन्मयत्त्व प्राप्त कराने के लिए अनेक प्रकार के विधान हैं, उनमें एक महत्वपूर्ण साधना 'पञ्च-भूतों की धारणा' है। इस साधना से मन की हीनता और अल्पता समाप्त होकर मन अपने असली चिन्मय स्वरूप को प्राप्त करता है।

पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश—ये पञ्च-भूत हैं। इन पंच भूतों की धारणा करते हुए 'तत्त्व-साधना' की जाती है। यथा—

१—पृथ्वी-तत्व की धारणा

देह में पैरों से लेकर घुटनों तक पृथ्वी-मण्डल है। उसका रङ्ग हरताल की भाँति पीला और आकार चतुष्कोण है। उसके अधिष्ठातृ देव ब्रह्मा हैं और बीज 'लं' है। साधक को चाहिये कि वह यह धारणा करे कि पाँचों तत्त्व, जो इन्द्रियों से बाहर दिखाई दे रहे हैं, वे सबके सब मेरे शरीर के ही अन्दर हैं। ऐसी भावना करते रहने से यह अनुभव होने लगता है कि मैं इस शरीर से बंधा नहीं हूँ अपितु मैं सम्पूर्ण पृथ्वी हूँ। मेरे शरीर की नस-नाड़ियाँ ही समस्त नदी-नद हैं और सम्पूर्ण जीव रोग अथवा आरोग्य के कोटाण हैं। इस प्रकार 'पृथ्वी-तत्त्व' की धारणा करने से शरीर निर्मल और नीरोग बन जाता है।

२—जल-तत्व की धारणा

घुटनों से लेकर गुप्तेन्द्रिय तक जल का स्थान है। जल-मण्डल कुन्द पुष्प, शङ्ख या चन्द्रमा की भाँति श्वेत वर्ण है। इसका आकार वृत्त (गोल) है और बीज अमृत-मय 'वं' है।

इसके अधिष्ठातृ देव चतुर्भुज-धारी भगवान् विष्णु हैं। जल-मण्डल के इस स्वरूप का चिन्तन करते हुए साधक प्राणों के साथ इसे हृदय में ले जाय और यथा-शक्ति पाँच घड़ी तक चिन्तन करता रहे। इस समय ऐसा अनुभव करे कि मैं 'जल-तत्व' हूँ। पृथ्वी का कण-कण मुझसे गीला हो रहा है। अमृत और विष दोनों मेरे ही स्वरूप हैं। पुष्पों की कोमलता और चट्टानों की दृढ़ता मेरे ही कारण है। पृथ्वी मेरा परिणाम है, मैं ही पृथ्वी के रूप में प्रकट हुआ हूँ। मुझमें ही नारायण का वास है। इस प्रकार जल-तत्व की धारणा करने से अन्तःकरण के विकार दूर हो जाते हैं। तीनों प्रकार के ताप मिट जाते हैं।

३--अग्नि-तत्व की धारणा

गुप्त इन्द्रिय से लेकर हृदय तक अग्नि-मण्डल है, यह त्रिकोण आकार का है, वर्ण रक्त है, बीज 'रं' है और मुख्य केन्द्र नाभि है। इसके अधिष्ठातृ देव रुद्र हैं। इस स्वरूप का चिन्तन करता हुआ साधक अपने प्राणों को स्थिर करे और यह धारणा करे कि मैं अग्नि हूँ। सम्पूर्ण पदार्थों का रंग-रूप जो आँखों का विषय है, वह मैं हूँ। जो भी कान्ति, सुन्दरता और आकर्षण है, वह सब मेरे ही कारण है। सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत् आदि के रूप में मैं ही प्रकाशित होता और चमकता हूँ। सबके चक्षुओं में प्रकट होकर मैं ही देखता हूँ। सम्पूर्ण देवताओं का शरीर मेरे द्वारा ही बना है। पाँच घड़ी तक ऐसी धारणा करने से 'अग्नि-तत्व' सिद्ध होता है। तब अग्नि का भय नहीं रहता। जलती हुई आग में कूद पड़ने पर भी साधक दग्ध नहीं होता।

४--वायु-तत्व की धारणा

हृदय से लेकर भ्रू-मध्य तक वायु-मण्डल की स्थिति है। इसका वर्ण काला है। यह षट्कोणाकार तत्व शक्ति-रूप है। इसका बीज 'यं' है। इसके अधिष्ठातृ देव ईश्वर हैं। प्राणों को स्थिर कर हृदय में वायु-तत्व की भावना पाँच घड़ी तक करे और यह अनुभव करे कि मैं वायु हूँ। अग्नि मेरा ही विकास है। अनन्त आकाश में जो भी ग्रह-नक्षत्र हैं, उन सबको मैंने ही धारण कर रखा है। हर वस्तु में जो आकर्षण-विकर्षण शक्ति है, वह मैं ही हूँ। सबकी गतियाँ मेरी कलाएँ हैं। श्वास-प्रश्वास बनकर मैं ही सबको जीवन देता हूँ। मेरी गति अबाध है। इस प्रकार धारणा करने से साधक आकाश में विचरण करने लगता है। वायु-रहित स्थान में भी वह जीवित रह सकता है। वह न जल से गलता है, न आग से जलता है और न वायु से सूखता है। बुढ़ापे और मृत्यु दोनों को वह जीत लेता है।

५--आकाश-तत्व की धारणा

भ्रू-मध्य से मूर्द्धा तक आकाश-मण्डल है। सागर के जल की भाँति इसका वर्ण नील, आकार वृत्त (गोल), बीज 'हं' और अधिष्ठातृ-देव सदाशिव हैं, जिनके मस्तक पर अर्द्ध-चन्द्र सुशोभित है। इनके पाँच मुख, दश भुजा और त्रिनेत्र हैं। प्राणों को स्थिर कर साधक पाँच घड़ी तक यह अनुभव करे कि मैं आकाश हूँ। देश-काल सब कुछ मेरे अन्दर है। मैं एक-रस हूँ, न मेरे बाहर कुछ है और न भीतर। मैं तन्मात्र हूँ। इस तत्व की सिद्धि से साधक आवागमन से रहित होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

धारणा का क्रम

पहले 'पृथ्वी-मण्डल' का चिन्तन कर उसे 'जल मण्डल' में विलीन कर दे। फिर 'जल-मण्डल' को 'अग्नि-मण्डल' में और 'अग्नि' को 'वायु' में तथा 'वायु' को 'आकाश-मण्डल' में विलीन कर दे। पञ्च-भूतों की धारणा अर्थात् क्रमशः कार्य को कारण में विलीन करना। नित्य नियम से सभी तत्त्वों को परम

कारण सदा-शिव में स्थापित कर सदा-शिव को आत्म-रूप समझ कर उसमें लीन हो जाए। प्रत्येक तत्त्व की धारणा का अभ्यास पाँच घड़ी अर्थात् दो घण्टे तक होना आवश्यक है।

प्रत्येक मण्डल का चिन्तन करते हुए प्रणव (ॐ) के द्वारा तीन-तीन प्राणायाम कर हर कार्य-मण्डल का मानस हवन कारण-मण्डल में निम्न मन्त्र से करे—

ॐ अमुक मण्डलं अमुक-मण्डले जुहोमि स्वाहा।

एक तत्त्व के सिद्ध हो जाने पर फिर उसकी धारणा करने की आवश्यकता नहीं, उसे तुरन्त अगले तत्त्व में लय कर देना चाहिए और अन्त में सदा-शिव-तत्त्व में लीन होकर स्थिर हो जाना चाहिए।

एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में विलीन करते समय निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ने चाहिए—

(१) पृथ्वी-तत्त्व को जल-तत्त्व में विलीन करने का मन्त्र—

ॐ ह्लां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्ति-कलात्मने हुँ फट् स्वाहा

(२) जल-तत्त्व को अग्नि-तत्त्व में विलीन करने का मन्त्र—

ॐ ह्लीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठा-कलात्मने हुँ फट् स्वाहा

(३) अग्नि-तत्त्व को वायु-तत्त्व में विलीन करने का मन्त्र—

ॐ ह्लूं रुद्राय तेजाधिपतये शान्ति-कलात्मने हुँ फट् स्वाहा

(४) वायु-तत्त्व को आकाश-तत्त्व में विलीन करने का मन्त्र—

ॐ ह्लैं ईशानाय वाय्वधिपतये विद्या-कलात्मने हुँ फट् स्वाहा

(५) आकाश-तत्त्व को कुण्डलिनी द्वारा अहङ्कार में विलीन करने का मन्त्र—

ॐ ह्लौं सदा-शिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीत-कलात्मने हुँ फट् स्वाहा।

तदनन्तर अहङ्कार को महत्-तत्त्व में; महत्-तत्त्व को शब्द-रूप प्रकृति में; प्रकृति को स्वयं-प्रकाश, परम कारण, आनन्द-स्वरूप, ज्योति-स्वरूप पर-ब्रह्म में विलीन कर देना चाहिये। यही पञ्च-तत्त्व-सिद्धि का परम लक्ष्य है। साधक को मध्य में मिलनेवाली अनेक प्रकार की सिद्धियों की उपेक्षा करते रहना चाहिये अन्यथा परम लक्ष्य तक पहुँचना प्रायः असम्भव ही रहता है।

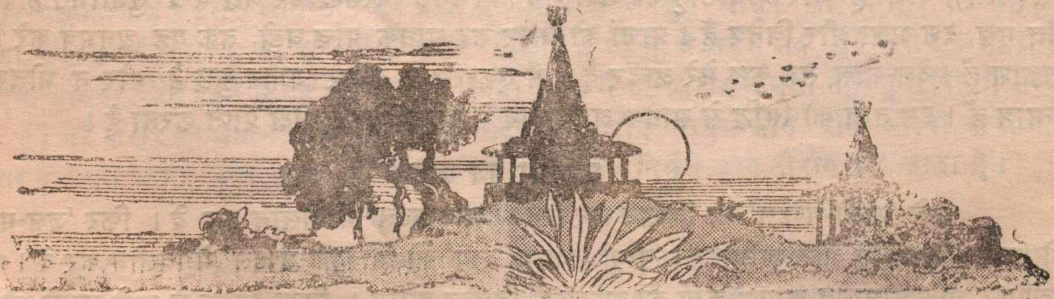

वर्ष-गाँठ कब और कैसे मनायें ?

पं० सतीशकुमार उपाध्याय, एम० ए०, ग्राम बँधवा, मेजा रोड़, इलाहाबाद

'**वर्ष-गाँठ**' का सामान्य भाषा में प्रयोग जन्म-तिथि और जन्म-दिन के रूप में होता है, परन्तु ये प्रचलित समानार्थी शब्द भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। ज्योतिष के यात्रा-प्रकरण में जन्म-दिन तथा जन्म-तिथि को यात्रा वर्जित है। अतः प्रचलित जन्म-तिथि तथा जन्म-दिन का प्रयोग 'वर्ष-गाँठ' के लिए ही किया गया है। जन्म-दिन, जन्म-तिथि तथा जन्म-नक्षत्र में पूजन का अलग महत्व है। जैसा कि हिन्दू-धर्म में विशिष्ट तिथि की महत्ता एवं उस तिथि को होनेवाली पूजा से स्पष्ट है। उदाहरण के लिए 'कृष्ण-जन्माष्टमी' के दिन, जो भाद्र कृष्ण अष्टमी को पड़ती है, पूजन के तीन आधार हैं—

१ रोहिणी नक्षत्र के पड़ने पर, २ सूर्योदय के समय अष्टमी होने पर, ३ अर्ध-रात्रि को अष्टमी तिथि होने पर कृष्ण-जन्माष्टमी मनाना।

इनमें प्रथम का आधार नक्षत्र है, द्वितीय का आधार उदया तिथि है तथा तृतीय का आधार तिथि का भोग-काल है। इससे स्पष्ट है कि तिथि-पूजन विभिन्न साम्प्रदायिक मतों पर निर्भर है।

अब आइये, विचार करें कि '**वर्ष-गाँठ**' का क्या तात्पर्य है। 'वर्ष-गाँठ' का अर्थ एक वर्ष पूर्ण होकर नूतन वर्ष के प्रारम्भ होने से है। अतः 'वर्ष-गाँठ' उस दिन मनायी जानी चाहिए, जिस दिन जातक का एक वर्ष पूर्ण होकर नवीन वर्ष प्रारम्भ हो। वर्ष—पृथ्वी द्वारा सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमा पूरी करने में लगा हुआ समय है। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार यह समय ३६५ दिन १५ घटी २१ पल तथा ३० विपल है, परन्तु आधुनिक ग्रह-गति अध्ययन के अनुसार यह समय ३६५ दिन १५ घटी २२ पल तथा ५७ विपल आता है। तात्पर्य यह कि जन्म-समय जिस राशि, अंश, कला तथा विकला पर सूर्य अधिष्ठित था, उसी राशि, अंश, कला तथा विकला पर सूर्य के आने पर नूतन वर्ष का प्रारम्भ होगा। ज्योतिष में 'वर्ष-कुण्डली' बनाने का आधार सौर वर्ष है, न कि सायन एवं चन्द्र वर्ष, जो क्रमशः ३६० एवं ३५४ दिन के बराबर होते हैं। हिन्दुओं में शुभ कार्य करने का आधार प्रथमतः सूर्य को बनाया है।

परन्तु समाज में '**वर्ष-गाँठ**' मनाने की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—१ अंग्रेजी जन्म-तिथि के आधार पर, २ चन्द्र-मास की जन्म-तिथि के आधार पर।

अंग्रेजी जन्म-तिथि के आधार पर 'वर्ष-गाँठ' मनाने पर, २९ फरवरी को जन्मे बालक की 'वर्ष-गाँठ' कब मनायी जाय, समस्या उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि २९ फरवरी चार की संख्या से विभाज्य वर्षों में हर चौथे साल पड़ती है। सौर वर्ष के कारण ही अंग्रेजी वर्ष ३६५ दिन तथा ३६६ दिन का होता है। यह विधि शुद्धता के कुछ निकट अवश्य है।

इसी प्रकार चन्द्र-मास की तिथि के आधार पर 'वर्ष-गाँठ' मनाने पर वर्ष वास्तविक वर्ष पूर्ण होने के ११ दिन पूर्व ही पड़ जायेगा। उदाहरण के लिए यदि किसी जातक का जन्म चन्द्र-मास की तिथि के अनुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत् २०४१ (२-४-८४ ई०) में हुआ, तो उसकी 'वर्ष-गाँठ' चन्द्र-मासानुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत् २०४२ (२२-३-८५) को ११ दिन पूर्व ही मनानी पड़ेगी। इस विधि से दूसरी कठिनाई तब पड़ती है, जब किसी जातक का जन्म अधिक मास में हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी जातक का जन्म अधिक श्रावण शुक्ल पक्ष चतुर्दशी संवत् २०४२ (३०-७-८५) को

हुआ। इस जातक की 'वर्ष-गाँठ' उसी वर्ष पड़ेगी, जिस वर्ष अधिक मास श्रावण मास में पड़े, जबकि यह आवश्यक नहीं है कि अधिक मास श्रावण में पड़े। अतः अधिक मास या क्षय मास में जन्म लेनेवाले जातकों की 'वर्ष-गाँठ' खटाई में पड़ गयी।

इस विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपर्युक्त दोनों पद्धतियाँ 'वर्ष-गाँठ' मनाने के लिए सर्वथा शुद्ध नहीं हैं। 'वर्ष-गाँठ' मनाने के लिए पंचांग में दी गयी सौर मास की तिथियों को मानना चाहिए। जिस दिन सौर मास को वह तिथि पड़े, 'वर्ष-गाँठ' मनायी जाय। सौर मास की तिथियाँ सूर्य-संक्रान्तियों से प्रारम्भ होती हैं। उदाहरण के लिए ३० जुलाई ८५ को सौर मास की तिथि १४ थी तथा सूर्य कर्क राशि का था। अधिक शुद्धता के लिए ('वर्ष-गाँठ' के दिन एवं समय हेतु) जन्म-कालिक सूर्य स्पष्ट को आधार बनाना चाहिए। उदाहरण के लिए ३० जुलाई ८५ को हृषीकेश पंचांगानुसार प्रातः-सूर्य स्पष्ट ३-१२-४२-१४ है। अतः इस दिन प्रातः जन्मे बालक का नूतन वर्ष अगले वर्ष उस दिन और उस समय से प्रारम्भ होगा, जिस दिन और जिस समय ३-१२-४२-१४ सूर्य स्पष्ट होगा। और इसी दिन और इसी समय 'वर्ष-गाँठ' मनायी जायेगी। किसी दैवज्ञ से इसे आसानी से जान सकते हैं।

यदि आप जन्म-दिन को अधिक महत्त्व देते हैं, तो दिन का पूजन हर सप्ताह कर सकते हैं। तथा चन्द्र-मास की जन्म-तिथि का पूजन हर मास में कर सकते हैं। तिथि सूर्य एवं चन्द्रमा के बीच के कोणीय मान को कहते हैं। एक तिथि का भोग लगभग १२ अंश के बराबर होता है। जन्म-तिथि के समय कोणीय मान सूर्य एवं चन्द्रमा का वही हो सकता है परन्तु अन्तरिक्ष में उनकी स्थिति वह नहीं होगी, जो जन्म के समय थी। ग्रहों के कोणीय सम्बन्ध का जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। तिथि-पूजन 'हिन्दी प्राण तोषिणी तन्त्र, भाग १' व 'तंत्रसार' में देख सकते हैं। परन्तु 'वर्ष-गाँठ' का पूजन नूतन वर्ष के समय ही सम्भव है।

अब आइये, यह विचार किया जाय कि 'वर्ष-गाँठ' किस प्रकार मनायी जाय क्योंकि 'वर्ष-गाँठ' परम्परा-रूप में ब्राह्मण-भोजन तथा सत्यनारायण व्रत-कथा तक ही सीमित है। 'वर्ष-गाँठ' के पूजन में दीर्घ आयु की कामना निहित है। 'वर्ष-गाँठ' के पूजन में दो प्रकार के पूजन निहित हैं—

१ सामान्य पूजन—जो सबके लिए आवश्यक है।

२ विशिष्ट पूजन—यह वर्ष-कुण्डली के आधार पर प्रतिकूल ग्रहों की शान्ति के लिए होता है।

'वर्ष-गाँठ' के सामान्य पूजन का विस्तृत विधान 'कौल - कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल द्वारा लिखित 'हिन्दुओं की पोथी' में वर्णित है। फिर भी संक्षेप में क्रम-संकेत करना आवश्यक समझता हूं। इस पूजन में नित्य-कर्म करने के पश्चात् 'वर्ष-गाँठ'-कर्म-सम्बन्धी संकल्प करे। तत्पश्चात् स्वस्ति-पाठ-पूर्वक कलश-स्थापन कर क्रमशः गणेश, वरुण, नव-ग्रह एवं षोडश - मातृका का पूजन करे। फिर क्रमशः मार्कण्डेय, व्यास, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बलि, प्रह्लाद, हनुमान और विभीषण—इन दीर्घजीवी महापुरुषों का ध्यान एवं उनके मन्त्रों द्वारा यथा-शक्ति षोडशोपचार पूजन करें। फिर—**'ॐ षां षष्ठ्यै नमः'**—इस मंत्र से दधि और अक्षत से षष्ठी देवी की पूजा कर नमस्कार करें।

तत्-पश्चात् नीचे लिखा मंत्र पढ़कर तिल-गुड़-मिश्रित दुग्ध का पान करे—

स-तिलं गुड-संमिश्रमञ्जलयर्ध-मितं पयः। मार्कण्डेयाद् वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये॥

तब फिर क्रमशः अभिषेक एवं तिलक के मन्त्र पढ़कर अभिषेक करें एवं तिलक लगावें।

विशिष्ट पूजन में यदि वर्ष-कुण्डली नहीं बनायी है, तो 'महा-मृत्युञ्जय मन्त्र' का जप अथवा 'दुर्गा-सप्तशती' का पाठ करें। अन्यथा दैवज्ञ के निर्देशानुसार ग्रहों एवं मुन्था की शान्ति करें या करावें।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

(वर्ष ४५ : पहला विशेषाङ्क)

चैत्र २०४३ : अप्रेल १९८६

दो शब्द

मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गत 'दुर्गा-सप्तशती' अत्यन्त महत्वपूर्ण और अद्भुत है। इसकी समानता और कोई ग्रन्थ नहीं कर सकता। स्वयं भगवान् शङ्कर ने 'दुर्गा-सप्तशती' के सम्बन्ध में कहा है--

सप्तशत्याश्च सकलं तत्त्वं वेद्म्यहमेव हि ।
पादोनं श्रीहरिर्वेत्ति वेत्त्यर्द्धं तु प्रजा-पतिः ।
व्यासस्तुर्य्यांशकं वेत्ति कोट्यंशमितरे जनाः ॥

'सप्तशती का तत्त्व पूर्णतया केवल मैं ही जानता हूँ। भगवान् विष्णु तीन ही चरण जानते हैं, ब्रह्माजी केवल दो अर्थात् आधा, व्यासजी केवल एक अर्थात् चौथाई और अन्य लोग करोड़वाँ भाग मात्र जानते हैं।'

'बीज-मन्त्रात्मक सप्तशती' साधकों के बीच अपना विशेष महत्व रखती है किन्तु अभी तक इसका कोई शोध-पूर्ण प्रामाणिक संस्करण कहीं से प्रकाशित नहीं हुआ था। इस ग्रन्थ के द्वारा इस दुर्लभ पद्धति को बोध-गम्य रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसकी उपयोगिता इसके देखने मात्र से पाठकों को स्पष्ट हो जायेगी। इसमें मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत वर्णित त्रयोदश अध्याय-युक्त सप्तशती (देवी-माहात्म्य) के समस्त ७०० मन्त्र बीज-रूप में हैं। इसका अनुष्ठान करना अत्यन्त सरल व सहज है। आचार्य से लेकर साधारण व्यक्ति भी इसका पाठ करके मनोवांछित फल प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि प्राप्त हस्त-लिखित प्रतियों में बीज-मन्त्रों का पाठ-भेद मिलता है पर इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को उन सभी का तुलनात्मक अध्ययन-अनुसंधान करके सम्पादित किया गया है, जिससे बीज-मन्त्रात्मक सप्तशती का सर्व-सम्मत शुद्ध स्वरूप शाक्त-जनों को सुलभ हो सके।

सार्थ

विशुद्ध चण्डी

(श्री दुर्गा सप्तशती)

'विशुद्ध चण्डी' के रूप में जब 'सप्तशती' के छः अङ्गों का शोधपूर्ण संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ, तब इस बात की माँग उठी कि 'विशुद्ध चण्डी' की हिन्दी टीका और व्याख्या भी प्रकाशित होनी चाहिये। श्री जगदम्बा के अनुग्रह से पूज्य शुक्लजी की पुण्य स्मृति में उक्त कार्य अब पूर्ण हुआ है और प्रस्तुत 'सार्थ चण्डी' के रूप में समर्पित है।

प्रस्तुत 'सार्थ चण्डी' में मूल सप्तशती के साथ-साथ उसके छः अङ्गों की भी टीका व व्याख्या प्रकाशित की गई है, जैसी कि 'विशुद्ध चण्डी' के प्रेमी पाठकों की मांग रही है। साथ ही भक्तों की मांग के अनुसार 'कुञ्जिका स्तोत्र' भी दे दिया गया है। आशा है कि इस प्रकाशन से 'सप्तशती' के भक्तों को इसके ऐतिहासिक स्वरूप की तथ्यात्मक प्रतीति होकर विशेष आनन्द की प्राप्ति होगी और इसी में हमारे परिश्रम की सार्थकता है।

सजिल्द मूल्य ५०-०० रु०। 'चण्डी' सदस्यों के लिये मूल्य ३५-०० रु०।

सप्तशती-तत्त्व

मूल्य ८-००

विशुद्ध चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)

मूल्य ६-००

बीज-मन्त्रात्मक

दुर्गा सप्तशती

विनियोगः — ॐ अस्य श्रीचण्डी - सप्तशत्याः प्रथम-मध्यमोत्तर-चरिताणां ब्रह्म-विष्णु-रुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकाली - महालक्ष्मी - महासरस्वत्यो देवताः, ऐं ह्रीं क्लीं बीजानि, नन्दा-शाकम्भरी-भीमाः शक्तयः, अग्नि-वायु-सूर्याः तत्त्वानि, ऋग्-यजुः-साम-वेदाः ध्यानानि, सकल-कामना-सिद्धये श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-देवता-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यासः — ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ऋषिभ्यो नमः, मुखे । श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-देवताभ्यो नमः, हृदि । ऐं ह्रीं क्लीं बीजेभ्यो नमः, गुह्ये । नन्दा-शाकम्भरी-भीमा-शक्तिभ्यो नमः, पादयोः । अग्नि-वायु-सूर्य-तत्त्वेभ्यो नमः, नाभौ । ऋग्-यजु-सामवेद-ध्यानेभ्यो नमः, हृदि । सकल-कामना-सिद्धये श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-देवता-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः, सर्वाङ्गे ।

षडङ्ग-न्यासः	कर-न्यासः	अङ्ग-न्यासः
स्लूं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
फ्रें	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
क्रीं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
म्लूं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुं
घ्रें	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
श्रूं	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यानम् — या चण्डी मधु-कैटभादि-दैत्य-दलनी या माहिषोन्मूलिनी,
या धूम्रेक्षण-चण्ड-मुण्ड-मथनी या रक्त-बीजाशिनी ।
शक्तिः शुम्भ-निशुम्भ-दैत्य-दलनी या सिद्धि-लक्ष्मीः परा,
सा दुर्गा नव कोटि-मूर्ति-सहिता मां पातु विश्वेश्वरी ।

जो भगवती चण्डिका मधु, कैटभ आदि दैत्यों का दलन करती हैं, जो महिषासुर का उन्मूलन करती हैं; जो धूम्रलोचन, चण्ड और मुण्ड का मथन करती हैं; जो रक्त-बीज का संहार करती हैं; जो भगवती शक्ति शुम्भ और निशुम्भ दैत्यों का बलन करती हैं; जो परा सिद्धि-लक्ष्मी हैं—वे नौ कोटि मूर्ति-वाली विश्वेश्वरी भगवती दुर्गा मेरी रक्षा करें ।

प्रथम चरित्र

प्रथम अध्याय

विनियोगः — ॐ अस्य श्रीप्रथम-चरितस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीमहाकाली देवता, ऐं बीजं, नन्दा शक्तिः, अग्निः तत्त्वं, ऋग्वेदः ध्यानं, धर्मार्थे श्रीमहाकाली-प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यासः — ब्रह्मा-ऋषये नमः, शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः, मुखे । श्रीमहाकाली-देवतायै नमः, हृदि । ऐं बीजाय नमः, गुह्ये । नन्दा-शक्त्यै नमः, पादयोः । अग्नि-तत्त्वाय नमः, नाभौ । ऋग्वेद-ध्यानाय नमः, हृदि । धर्मार्थे श्रीमहाकाली-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः, सर्वाङ्गे ।

षडङ्ग-न्यासः	कर-न्यासः	अङ्ग-न्यासः
ऐं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ऐं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ऐं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ऐं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुं
ऐं	कनिष्ठाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ऐं	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय-फट्

ध्यानम् —खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः,
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रि-नयनां सर्वाङ्ग-भूषावृताम् ।
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाद-दशकां सेवे महा-कालिकाम्,
यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥

भगवान् विष्णु के सो जाने पर मधु और कैटभ को मारने के लिये कमल - जन्मा ब्रह्माजी ने जिनका स्तवन किया था, उन महा-काली देवी की मैं सेवा करता हूँ । वे अपने दस हाथों में खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मुण्ड और शङ्ख धारण करती हैं । उनके तीन नेत्र हैं । वे समस्त अङ्गों में दिव्य आभूषणों से विभूषित हैं । उनके शरीर की कान्ति नीलमणि के समान है तथा वे दस मुख और दस पैरों से युक्त हैं ।

ॐ ऐं—श्रीं १ ह्रीं २ क्लीं ३ श्रीं ४ प्रीं ५ ह्रां ६ ह्रीं ७ सौं ८ प्रें ९ म्रीं १० ह्ल्रीं ११ म्लीं १२ स्त्रीं १३ क्रां १४ ह्स्लीं १५ क्रीं १६ चां १७ भें १८ क्रीं १९ वैं २० ह्रौं २१ युं २२ जुं २३ हं २४ शं २५ रौं २६ यं २७ विं २८ वैं २९ चें ३० ह्रीं ३१ क्रूं ३२ सं ३३ कं ३४ श्रां ३५ त्रों ३६ स्त्रां ३७ ज्यैं ३८ रौं ३९ द्रां ४० द्रों ४१ ह्रां ४२ द्रूं ४३ शां ४४ म्रीं ४५ श्रौं ४६ जुं ४७ ह्ल्रूं ४८ श्रूं ४९ प्रीं ५० रं ५१ वं ५२ व्रीं ५३ ब्लूं ५४ स्त्रौं ५५ ब्लां ५६ लूं ५७ सां ५८ रौं ५९ ह्सौं ६० क्रूं ६१ शौं ६२ श्रौं ६३ वं ६४ त्रूं ६५ क्रौं ६६ क्लूं ६७ क्लीं ६८ श्रीं ६९ ब्लूं ७० ठां ७१ ठ्रीं ७२ स्त्रां ७३ स्लूं ७४ क्रैं ७५ च्रां ७६ फ्रां ७७ ज्रीं ७८ लूं ७९ स्लूं ८० नों ८१ स्त्रीं ८२ प्रूं ८३ स्त्रूं ८४ ज्रां ८५ वौं ८६ ओं ८७ श्रौं ८८ ऋं ८९ रूं ९० क्लीं ९१ दुं ९२ ह्रीं ९३ गूं ९४ लां ९५ ह्रां ९६ गूं ९७ ऐं ९८ श्रौं ९९ जूं १०० डें १०१ श्रौं १०२ छ्रां १०३ क्लीं १०४—ऐं ॐ । ॥ ॐ नमश्चण्डिकायै प्रथमः ॐ तत्सत् ॥

मध्यम चरित

द्वितीय अध्याय

विनियोगः — अस्य श्रीमध्यम-चरितस्य विष्णु ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, श्रीमहा-लक्ष्मी देवता, ह्रीं बीजम्, शाकम्भरी शक्तिः, वायुः तत्त्वम्, यजुर्वेदः ध्यानं, अर्थ-प्राप्त्यै श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यासः — विष्णु-ऋषये नमः, शिरसि । उष्णिक्-छन्दसे नमः, मुखे । श्रीमहा-लक्ष्मी-देवतायै नमः, हृदि । ह्रीं बीजाय नमः, गुह्ये । शाकम्भरी - शक्तये नमः, पादयोः । वायु-तत्त्वाय नमः, नाभौ । यजुर्वेद-ध्यानाय नमः, हृदि । अर्थ-प्राप्त्यै श्रीमहा-लक्ष्मी-प्रीत्यर्थेजपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ॥

षडङ्ग-न्यासः	कर-न्यासः	अङ्ग-न्यासः
ह्रां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ह्रीं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ह्रूं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ह्रैं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुं
ह्रौं	कनिष्ठाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ह्रः	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यानम् —अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु-कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकाम्,
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुरा-भाजनम् ।
शूलं पाश-सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां,
सेवे सैरभि-मर्दिनीमिह महा-लक्ष्मीं सरोज-स्थिताम् ।।

मैं कमल के आसन पर बैठी हुई प्रसन्न मुखवाली महिषासुर-मर्दिनी भगवती महा-लक्ष्मी की सेवा करता हूँ, जो अपने हाथों में अक्ष-माला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शङ्ख, घण्टा, मधु-पात्र, शूल, पाश और चक्र धारण करती हैं ।

ॐ ह्रीं—श्रौं १ श्रीं २ ह्रसूं ३ हौं ४ ह्रीं ५ अं ६ क्लौं ७ चां ८ मुं ९ डां १० यें ११ विं १२ च्चें १३ ईं १४ सौं १५ व्रां १६ त्रौं १७ लूं १८ वं १९ वं २० ह्रां २१ क्रीं २२ सौं २३ यं २४ ऐं २५ मूं २६ सः २७ हं २८ सों २९ शं ३० हं ३१ ह्रौं ३२ म्लीं ३३ यूं ३४ त्रूं ३५ स्त्रौं ३६ आं ३७ प्रें ३८ शं ३९ ह्रां ४० स्मूं ४१ ऊं ४२ गूं ४३ व्र्यूं ४४ ह्रूं ४५ भैं ४६ ह्रां ४७ क्रूं ४८ मूं ४९ ल्ह्रीं ५० श्रां ५१ द्रूं ५२ द्व्रूं ५३ ह्रसौं ५४ क्रां ५५ स्हौं ५६ म्लूं ५७ श्रीं ५८ गैं ५९ क्रूं ६० त्रीं ६१ क्स्फ्रीं ६२ कं ६३ फ्रों ६४ ह्रीं ६५ शां ६६ क्ष्म्रीं ६७ रों ६८ डुं ६९ ।

।। ॐ नमश्चण्डिकायै द्वितीयः ॐ तत्सत् ।।

तृतीय अध्याय

ध्यानम् —उद्यद्भानु-सहस्र-कान्तिमरुण-क्षौमां शिरो-मालिकां,
रक्तालिप्त-पयोधरां जप-वटीं विद्यामभीतिं वरम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्र-विलसद्-वक्त्रारविन्द-श्रियम्,
देवीं बद्ध-हिमांशु-रत्न-मुकुटां वन्देऽरविन्द-स्थिताम् ।।

जगदम्बा के श्रीअङ्गों की कान्ति उदय-काल के सहस्रों सूर्यों के समान है। वे लाल रंग की रेशमी साड़ी पहने हुए हैं । उनके गले में मुण्ड-माला शोभा पा रही है । दोनों स्तनों पर रक्त-चन्दन का लेप लगा है । वे अपने कर-कमलों में जप-मालिका, विद्या और अभय तथा वर नामक मुद्राएँ धारण किये हुये हैं । तीन नेत्रों से सुशोभित मुखारविन्द की बड़ी शोभा हो रही है । उनके मस्तक पर चन्द्रमा के साथ ही रत्न-मय मुकुट बँधा है तथा वे कमलासन पर विराजती हैं । ऐसी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

श्रौं १ क्लीं २ सां ३ त्रों ४ प्रूं ५ ग्लौं ६ क्रौं ७ व्रीं ८ स्लीं ९ ह्रीं १० हौं ११ श्रां १२ ग्रीं १३ क्रूं १४ क्रीं १५ यां १६ द्लूं १७ द्रूं १८ क्षं १९ ओं २० क्रौं २१ क्ष्म्क्ल्रीं २२ वां २३ श्रूं २४ ग्लूं २५ ल्रीं २६ प्रें २७ हूं २८ ह्रौं २९ दें ३० नूं ३१ आं ३२ फ्रां ३३ प्रीं ३४ दं ३५ फ्रीं ३६ ह्रीं ३७ गूं ३८ श्रौं ३९ सां ४० श्रीं ४१ जुं ४२ हं ४३ सं ४४ । ।। ॐ नमश्चण्डिकायै तृतीयः ॐ तत्सत् ।।

चतुर्थ अध्याय

ध्यानम् —कालाभ्राभां कटाक्षैररि-कुल-भयदां मौलि-बद्धेन्दु-रेखां,
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंह-स्कन्धाधिरूढ़ां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं,
ध्याये दुर्गां जयाख्यां त्रिदश-परिवृतां सेवितां सिद्धि-कामैः ॥

सिद्धि की इच्छा रखनेवाले पुरुष जिनकी सेवा करते हैं तथा देवता जिन्हें सब ओर से घेरे रहते हैं, उन 'जया' नामवाली दुर्गा देवी का मैं ध्यान करता हूँ। उनके श्रीअङ्गों की आभा काले मेघ के समान श्याम है। वे अपने कटाक्षों से शत्रु-समूह को भय प्रदान करती हैं, उनके मस्तक पर आबद्ध चन्द्रमा की रेखा शोभा पाती है। वे अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। सिंह के कंधे पर चढ़ी हुई हैं और अपने तेज से तीनों लोकों को परिपूर्ण कर रही हैं।

श्रौं १ सौं २ दीं ३ प्रें ४ यां ५ रूं ६ भं ७ सूं ८ श्रां ९ औं १० लूं ११ डूं १२ जूं १३ धूं १४ त्रें १५ ह्लीं १६ श्रीं १७ ईं १८ ह्रां १९ ह्ल्रूं २० क्लूं २१ क्रां २२ ल्लूं २३ फ्रें २४ क्रीं २५ म्लूं २६ घ्रें २७ श्रौं २८ ह्रौं २९ व्रीं ३० ह्रीं ३१ त्रौं ३२ हल्लौं ३३ गीं ३४ यूं ३५ ह्लीं ३६ ह्लूं ३७ श्रौं ३८ ओं ३९ श्रं ४० म्हौं ४१ प्रीं ४२—ह्रीं ॐ।

॥ ॐ नमश्चण्डिकायै चतुर्थः ॐ तत्सत् ॥

उत्तम चरित्र

पञ्चम अध्याय

विनियोगः — अस्य श्रीउत्तम - चरितस्य रुद्र ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, महा-सरस्वती देवता, क्लीं बीजं, भीमा शक्तिः, सूर्यः तत्वं, साम - वेदः ध्यानं, कामाप्त्यै महा-सरस्वती-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यासः — रुद्र - ऋषये नमः, शिरसि। अनुष्टुप्-छन्दसे नमः, मुखे। महा-सरस्वती-देवतायै नमः, हृदि। क्लीं बीजाय नमः, गुह्ये। भीमा-शक्त्यै नमः, पादयोः। सूर्य - तत्त्वाय नमः, नाभौ। सामवेद-ध्यानाय नमः, हृदि। कामाप्त्यै महा-सरस्वती-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः, सर्वाङ्गे।

षडङ्ग-न्यासः	कर-न्यासः	अङ्ग-न्यास
क्लां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
क्लीं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
क्लूं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
क्लैं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुं
क्लौं	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
क्लः	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यानम् —घण्टा-शूल-हलानि शङ्ख-मुसले चक्रं धनुः सायकम्,
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त-विलच्छीतांशु-तुल्य-प्रभाम् ।
गौरी-देह-समुद्भवां त्रिनयनामाधार - भूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनु-भजे शुम्भादि - दैत्यार्दिनीम् ।।

जो अपने कर-कमलों में घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूशल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, शरद् ऋतु के शोभा-सम्पन्न चन्द्रमा के समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो तीनों लोकों की आधार-भूता और शुम्भ आदि दैत्यों का नाश करनेवाली हैं तथा गौरी के शरीर से जिनका प्राकट्य हुआ है, उन महा-सरस्वती देवी का मैं निरन्तर भजन करता हूं।

ॐ क्लीं—श्रौं १ प्रीं २ ओं ३ ह्रीं ४ ल्रीं ५ त्रों ६ क्रीं ७ ह्सौं ८ ह्रीं ९ श्रीं १० हूं ११ क्लीं १२ रौं १३ स्त्रीं १४ म्लीं १५ प्लूं १६ स्हौं १७ स्त्रीं १८ ग्लूं १९ व्रीं २० सौं २१ लूं २२ ल्लूं २३ द्रां २४ क्सां २५ क्ष्म्रीं २६ ग्लौं २७ स्कं २८ त्रूं २९ स्क्लूं ३० क्रौं ३१ च्छ्रीं ३२ म्लूं ३३ क्लूं ३४ शां ३५ ल्हीं ३६ स्त्रूं ३७ ल्लीं ३८ लीं ३९ सं ४० लूं ४१ ह्सूं ४२ श्रूं ४३ जूं ४४ ह्स्ल्रीं ४५ स्कीं ४६ क्लां ४७ श्रूं ४८ हं ४९ ह्लीं ५० क्स्रूं ५१ द्रौं ५२ क्लूं ५३ गां ५४ सं ५५ ल्स्रां ५६ फ्रीं ५७ स्लां ५८ ल्लूं ५९ फ्रें ६० ओं ६१ स्म्लीं ६२ ह्रां ६३ ऊं ६४ ह्लूं ६५ हूं ६६ नं ६७ स्त्रां ६८ वं ६९ मं ७० म्क्लीं ७१ शां ७२ लं ७३ भैं ७४ ल्लूं ७५ हौं ७६ ईं ७७ चें ७८ क्ल्रीं ७९ ह्ल्रीं ८० क्ष्म्ल्रीं ८१ पूं ८२ श्रौं ८३ ह्रौं ८४ भ्रूं ८५ क्स्त्रीं ८६ आं ८७ क्रूं ८८ त्रूं ८९ डूं ९० जां ९१ ह्ल्रूं ९२ फ्रौं ९३ क्रौं ९४ किं ९५ ग्लूं ९६ छ्क्लीं ९७ रं ९८ क्सैं ९९ स्हुं १०० श्रौं १०१ श्रःश्रीं १०२ ओं १०३ लूं १०४ ह्लूं १०५ ल्लूं १०६ स्क्रीं १०७ स्स्रौं १०८ स्भ्रूं १०९ क्ष्म्क्लीं ११० व्रीं १११ सीं ११२ भूं ११३ लां ११४ श्रौं ११५ स्हैं ११६ ह्रीं ११७ श्रीं ११८ फ्रें ११९ रूं १२० च्छ्रूं १२१ ह्लूं १२२ कं १२३ द्रें १२४ श्रीं १२५ सां १२६ ह्रीं १२७ ऐं १२८ स्कीं १२९ ।

।। ॐ नमश्चण्डिकायै पंचमः ॐ तत्सत् ।।

षष्ठ अध्याय

ध्यानम् —नागाधीश्वर - विष्टरां फणि - फणोत्तंसोरु - रत्नावलीं,

भास्वद्-देह-लतां दिवाकर-निभां नेत्र-त्रयोद्भासिताम् ।

माला-कुम्भ-कपाल - नीरज - करां चन्द्रार्ध - चूड़ां परां,

सर्वज्ञेश्वर - भैरवाङ्क - निलयां पद्मावतीं चिन्तये ॥

मैं सर्वज्ञेश्वर भैरव के अङ्क में निवास करनेवाली परमोत्कृष्ट पद्मावती देवी का चिन्तन करता हूं। वे नागराज के आसन पर बैठी हैं, नागों के फणों में सुशोभित होनेवाली मणियों की विशाल माला से उनकी देह-लता उद्भासित हो रही है। सूर्य के समान उनका तेज है, तीन नेत्र उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे हाथों में माला, कुम्भ, कपाल और कमल लिये हुये हैं तथा उनके मस्तक में अर्द्ध-चन्द्र का मुकुट सुशोभित है।

श्रौं १ श्रों २ त्रूं ३ ह्लौं ४ क्रौं ५ श्रौं ६ त्रीं ७ क्लीं ८ प्रीं ९ ह्रीं १० ह्रौं ११ श्रौं १२ ऐं १३ श्रों १४ श्रौं १५ क्रां १६ हूं १७ छ्रां १८ क्ष्म्क्लरीं १९ ल्लुं २० सौं २१ ह्लौं २२ क्रूं २३ सौं २४ ।

॥ ॐ नमश्चण्डिकायै षष्ठः ॐ तत्सत् ॥

सप्तम अध्याय

ध्यानम् —ध्यायेयं रत्न-पीठे शुक-कल - पठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं,

न्यस्तैकाङ्घ्रि-सरोजे शशि-शकल-धरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।

कह्लाराबद्ध-मालां नियमित-विलसच्चोलिकां रक्त-वस्त्रां,

मातङ्गीं शंख-पात्रां मधुर-मधु-मदां चित्रकोद्भासि-भालाम् ॥

मैं मातङ्गी देवी का ध्यान करता हूं। वे रत्न-मय सिंहासन पर बैठकर पढ़ते हुये तोते का मधुर शब्द सुन रही हैं। उनके शरीर का वर्ण श्याम है। वे अपना एक पैर कमल पर रक्खे हुए हैं और मस्तक पर अर्ध-चन्द्र धारण करती हैं। कह्लार-पुष्पों की माला धारण किये वीणा बजाती हैं। उनके अङ्ग में कसी हुई चोली शोभा पा रही है। लाल रंग की साड़ी पहने हाथ में शङ्ख का पात्र लिये हुये हैं। वे मधुर मधु से आनन्दिता हैं और उनके ललाट में बिंदी शोभा दे रही है।

श्रौं १ कुं २ ह्लीं ३ ह्रं ४ मूं ५ त्रौं ६ ह्लौं ७ श्रों ८ ह्सूं ९ क्लूं १० क्रें ११ नें १२ लूं १३ ह्स्लीं १४ प्लूं १५ शां १६ स्लूं १७ प्लीं १८ प्रें १९ श्रं २० श्रौं २१ भ्लरीं २२ श्रां २३ सौं २४ श्रौं २५ प्रीं २६ ह्स्व्रीं २७ ।

॥ ॐ नमश्चण्डिकायै सप्तमः ॐ तत्सत् ॥

अष्टम अध्याय

ध्यानम् — अरुणां करुणा-तरंगिताक्षीं धृत-पाशांकुश-बाण-चाप-हस्ताम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ।।

मैं अणिमा आदि सिद्धि-मयी किरणों से आवृत भवानी का ध्यान करता हूं। उनके शरीर का रंग लाल है, नेत्रों में करुणा लहरा रही है तथा हाथों में पाश, अंकुश, बाण और धनुष शोभा पाते हैं।

श्रौं १ म्हल्रीं २ प्रूं ३ एं ४ क्रों ५ ईं ६ एं ७ ल्रीं ८ फ्रों ९ म्लूं १० नों ११ हूं १२ फ्रौं १३ ग्लौं १४ स्मौं १५ सौं १६ श्रीं १७ स्हौं १८ ख्सें १९ क्ष्म्लीं २० ह्लौं २१ वीं २२ लूं २३ ल्सीं २४ ब्लीं २५ त्स्रों २६ ब्रुं २७ श्क्लीं २८ श्रूं २९ ह्रीं ३० शीं ३१ क्लीं ३२ क्लौं ३३ फ्रूं ३४ ह्लूं ३५ क्लूं ३६ तां ३७ म्लूं ३८ हं ३९ स्लूं ४० औं ४१ ह्लौं ४२ श्ल्रीं ४३ यां ४४ क्ष्लीं ४५ ह्लीं ४६ ग्लौं ४७ ह्रौं ४८ प्रां ४९ क्रीं ५० क्लीं ५१ न्स्लुं ५२ हीं ५३ ह्लौं ५४ ह्रैं ५५ भ्रं ५६ सौं ५७ श्रीं ५८ प्सूं ५९ द्रौं ६० स्स्रां ६१ ह्स्लीं ६२ स्ल्ल्रीं ६३ । ।। ॐ नमश्चण्डिकायै अष्टमः ॐ तत्सत् ।।

नवम अध्याय

ध्यानम् — बन्धूक-काञ्चन-निभं रुचिराक्ष-मालां, पाशांकुशौ च वरदां निज-बाहु-दण्डैः ।
बिभ्राणामिन्दु - शकलाभरणं त्रिनेत्रमर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ।।

मैं अर्ध-नारीश्वर के श्रीविग्रह की निरन्तर शरण लेता हूं। उसका वर्ण बन्धूक-पुष्प और सुवर्ण के समान रक्त-पीत-मिश्रित है। वह अपनी भुजाओं में सुन्दर अक्षमाला, पाश, अंकुश और वर-मुद्रा धारण करता है; अर्धचन्द्र उसका आभूषण है तथा वह तीन नेत्रों से सुशोभित है।

रौं १ क्लीं २ म्लौं ३ श्रौं ४ ग्लीं ५ ह्रौं ६ ह्सौं ७ ईं ८ ब्रूं ९ श्रां १० लूं ११ आं १२ श्रीं १३ क्रौं १४ प्रूं १५ क्लीं १६ भ्रूं १७ ह्रौं १८ क्रीं १९ म्लीं २० ग्लौं २१ ह्सूं २२ प्लीं २३ ह्रौं २४ ह्स्रां २५ स्हौं २६ ल्लूं २७ क्स्लीं २८ श्रीं २९ स्तूं ३० चें ३१ वीं ३२ क्ष्लूं ३३ श्लूं ३४ क्रूं ३५ क्रां ३६ ह्लौं ३७ क्रां ३८ स्क्ष्लीं ३९ स्त्रूं ४० फ्रूं ४१ ।

।। ॐ नमश्चण्डिकायै नवमः ॐ तत्सत् ।।

दशम अध्याय

ध्यानम् — उत्तप्त-हेम-रुचिरां रवि-चन्द्र - वह्नि-नेत्रां धनुश्शर - युतांकुश-पाश-शूलम् ।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिव-शक्ति-रूपां, कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दु-लेखाम् ।।

मैं मस्तक पर अर्द्ध-चन्द्र धारण करनेवाली शिव-शक्ति-स्वरूपा भगवती कामेश्वरी का हृदय में चिन्तन करता हूं। वे तपाये सुवर्ण के समान सुन्दर हैं। सूर्य-चन्द्रमा और अग्नि—ये ही तीन उनके नेत्र हैं तथा वे अपने मनोहर हाथों में धनुष-वाण, अंकुश, पाश और शूल धारण किये हुए हैं।

श्रौं १ ह्रीं २ ब्लूं ३ ह्रीं ४ म्लूं ५ श्रौं ६ ह्रीं ७ ग्लौं ८ श्रौं ९ धूं १० हूं ११ द्रौं १२ श्रौं १३ व्रूं १४ ब्रूं १५ फ्रें १६ ह्रां १७ जुं १८ सौः १९ स्लूं २० प्रें २१ हस्वां २२ प्रीं २३ फ्रां २४ क्रीं २५ श्रीं २६ क्रां २७ सः २८ क्लीं २९ व्रें ३० इं ३१ ज्स्ह्ल्रीं ३२।

॥ ॐ नमश्चण्डिकायै दशमः ॐ तत्सत् ॥

एकादश अध्याय

ध्यानम् – बाल-रवि-द्युतिमिन्दु-किरीटां, तुङ्ग-कुचां नयन-त्रय-युक्ताम्।

स्मेर-मुखीं वरदांकुश-पाशाभीति-करां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

मैं भुवनेश्वरी देवी का ध्यान करता हूं। उनके अङ्गों की आभा प्रभात-काल के सूर्य के समान है। मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट है। वे उभरे हुए स्तनों और तीनों नेत्रों से युक्त हैं। उनके मुख पर मुसकान की छटा छायी रहती है और हाथों में वर, अंकुश, पाश एवम् अभय-मुद्रा शोभा पाते हैं।

श्रौं १ क्रूं २ श्रीं ३ ल्लीं ४ प्रें ५ सौः ६ स्हौं ७ श्रूं ८ क्लीं ९ स्क्लीं १० प्रीं ११ ग्लौं १२ ह्स्ह्रीं १३ स्तौं १४ लीं १५ म्लीं १६ स्तूं १७ ज्स्ह्रीं १८ फ्रूं १९ क्रूं २० ह्रीं २१ ल्लूं २२ क्ष्म्रीं २३ श्रूं २४ इं २५ जुं २६ त्रैं २७ द्रूं २८ ह्रौं २९ क्लीं ३० सूं ३१ हौं ३२ श्व्रं ३३ ब्रूं ३४ स्फ्रूं ३५ ह्रीं ३६ लं ३७ ह्सौं ३८ सें ३९ ह्रीं ४० ह्रीं ४१ विं ४२ प्लीं ४३ क्ष्म्क्लीं ४४ त्स्रां ४५ प्रं ४६ म्लीं ४७ स्त्रूं ४८ क्ष्मां ४९ स्तूं ५० स्ह्रीं ५१ थ्प्रीं ५२ क्रौं ५३ श्रां ५४ म्लीं ५५।

॥ ॐ नमश्चण्डिकायै एकादशः ॐ तत्सत् ॥

द्वादश अध्याय

ध्यानम् –विद्युद्दाम-सम - प्रभां मृगपति - स्कन्ध-स्थितां भीषणां,

कन्याभिः करवाल - खेट-विलसद्धस्ताभिरासेविताम्।

हस्तैश्चक्र - गदासि - खेट - विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम्,

विभ्राणामनलात्मिकां शशि-धरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

मैं तीन नेत्रोंवाली दुर्गा देवी का ध्यान करता हूं, उनके श्रीअङ्गों की प्रभा बिजली के समान है। वे सिंह के कंधे पर बैठी हुई भयंकर प्रतीत होती हैं। हाथों में तलवार और ढाल लिये अनेक कन्यायें उनकी सेवा में खड़ी हैं। अपने हाथों में चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और तर्जनी-मुद्रा धारण किये हुये हैं। उनका स्वरूप अग्नि-मय है तथा वे माथे पर चन्द्रमा का मुकुट धारण करती हैं।

ह्लीं १ ओं २ श्रीं ३ ईं ४ क्लीं ५ क्रूं ६ श्रूं ७ प्रां ८ क्रूं ९ दिं १० फ्रें ११
हं १२ सः १३ चें १४ सूं १५ प्रों १६ ब्लूं १७ श्रां १८ औं १९ ह्रीं २० क्रीं २१ द्रां
२२ श्रीं २३ स्लीं २४ क्लीं २५ स्लूं २६ ह्रीं २७ ब्लीं २८ त्रों २९ श्रों ३० श्रौं
३१ ऐं ३२ प्रें ३३ द्रूं ३४ क्लूं ३५ औं ३६ सूं ३७ चें ३८ ह्रूं ३९ प्लीं ४० क्षां ४१।

॥ ॐ नमश्चण्डिकायै द्वादशः ॐ तत्सत् ॥

त्रयोदश अध्याय

ध्यानम् – बालार्क - मण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशांकुश - वराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥

जो उदय-काल के सूर्य-मण्डल की-सी कान्ति धारण करनेवाली हैं, जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं तथा जो अपने हाथों में पाश, अंकुश, वर एवं अभय की मुद्रा धारण किये रहती हैं, उन शिवा-देवी का मैं ध्यान करता हूं।

श्रौं १ व्रीं २ ओं ३ श्रौं ४ ह्रां ५ श्रीं ६ श्रां ७ ओं ८ प्लीं ९ सौं १० ह्रीं
११ क्रीं १२ ल्लूं १३ क्लीं १४ ह्रीं १५ प्लीं १६ श्रीं १७ ल्लीं १८ श्रूं १९ ह्रीं
२० त्रूं २१ ह्रूं २२ ह्रां २३ प्रीं २४ ऊं २५ सूं २६ ह्लौं २७ षौं २८ आं २९ ॐ ३०
—क्लीं ॐ।

॥ ॐ नमश्चण्डिकायै त्रयोदशः ॐ तत्सत् ॥

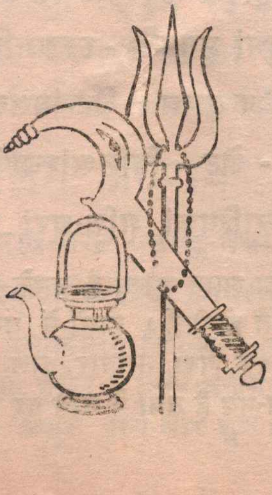

आवश्यक ज्ञातव्य

बीज-मन्त्रात्मक दुर्गा-सप्तशती के पाठ में कवच, अर्गला, कीलक, सूक्त-द्वय (प्रारम्भ में रात्रि-सूक्त और अन्त में देवीसूक्त), रहस्य-त्रय आदि का पाठ तथा शापोद्धार, उत्कीलन व मृत-संजीवनी-विद्या के जपादि की आवश्यकता नहीं है। केवल आदि में तथा अन्त में नवार्ण मन्त्र एवं बीज-गायत्री का १०८ बार जप परमावश्यक है। यही सिद्धान्त महात्माओं और विद्वद्-वृन्द से तथा हस्तलिखित प्रतियों से ज्ञात होता है।

नवार्ण-विधि

भगवती दुर्गा का सर्वाधिक प्रसिद्ध नवार्ण-मन्त्र है। यह मूलतः नौ अक्षरों (नव + अर्ण = नवार्ण) का मन्त्र है। यथा—

ऐं	ह्रीं	क्लीं	चा	मुं	डा	यै	वि	च्चे
१	२	३	४	५	६	७	८	९

ये ९ अक्षर नव-दुर्गा और नव-रात्र के प्रतीक हैं। 'ॐ' को इसके साथ लगा देने से यह मन्त्र दशाक्षर हो जाता है, जो शक्ति-तत्त्व के अनुरूप नहीं है। शास्त्रों में कहा भी है—

वाक् चैव कामः शक्तिश्च प्रणवः श्रीश्च कथ्यते। तदाद्येषु च मन्त्रेषु प्रणवं नैव योजयेत्॥

जिन मन्त्रों के आदि में १ ऐं, २ क्लीं, ३ ह्रीं और ४ श्रीं हो, उन मन्त्रों के आदि में 'ॐ' नहीं लगाना चाहिए क्योंकि ये बीज-मन्त्र भी प्रणव-रूप हैं। अतः नवार्ण-मन्त्र में 'ॐ' लगाने की आवश्यकता नहीं है। हम लोगों की यही गुरु-परम्परा है।

नवार्ण-मन्त्र का विनियोग

दाहिने हाथ में जल लेकर विनियोग पढ़े और जल को सामने रखे पात्र में छोड़ दे—

ॐ अस्य श्रीनवार्ण-मन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-रुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहा-काली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकं, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महा-सरस्वती-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास

नीचे लिखे न्यास-वाक्यों से एक-एक का उच्चारण करके दाहिने हाथ की अँगुलियों से क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुह्य अङ्ग, दोनों चरण और नाभि का स्पर्श करे—

ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ऋषिभ्यो नमः-शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः-मुखे। महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-देवताभ्यो नमः-हृदि। ऐं बीजाय नमः-गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः-पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः-नाभौ।

कर-न्यास

'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'—इस मूल - मन्त्र से हाथों की शुद्धि करके कर-न्यास करे।

कर-न्यास में हाथ की विभिन्न अँगुलियों, हथेलियों और हाथ के पृष्ठ-भाग में मन्त्रों का न्यास (स्थापन) किया जाता है। इसी प्रकार हृदयादि-न्यास में हृदयादि अङ्गों में मन्त्रों की स्थापना होती है। मन्त्रों को चेतन और मूर्तिमान् मानकर उन-उन अङ्गों का नाम लेकर उन मन्त्र-मय देवताओं

का ही स्पर्श और वन्दन किया जाता है। ऐसा करने से पाठ या जप करनेवाला स्वयं मन्त्र-मय होकर मन्त्र-देवताओं द्वारा सर्वथा सुरक्षित हो जाता है। उसके बाहर-भीतर की शुद्धि होती है, दिव्य बल प्राप्त होता है और साधना निर्विघ्नता-पूर्वक पूर्ण तथा परम लाभदायक होती है।

ऐं—अंगुष्ठाभ्यां नमः (दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श)। ह्रीं—तर्जनीभ्यां नमः (दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों तर्जनी अँगुलियों का स्पर्श)। क्लीं—मध्यमाभ्यां नमः (अँगूठों से मध्यमा अँगुलियों का स्पर्श) चामुण्डायै—अनामिकाभ्यां नमः (अनामिका अँगुलियों का स्पर्श)। विच्चे—कनिष्ठिकाभ्यां नमः (कनिष्ठिका अँगुलियों का स्पर्श)। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे—करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः (हथेलियों और उनके पृष्ठ-भागों का परस्पर स्पर्श)।

हृदयादि-न्यास

दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों से 'हृदय' आदि अङ्गों का स्पर्श—

ऐं—हृदयाय नमः (हृदय का स्पर्श)। ह्रीं—शिरसे स्वाहा (सिर का स्पर्श)। क्लीं—शिखायै वषट् (शिखा का स्पर्श)। चामुण्डायै—कवचाय हुं (दाहिने हाथ से बाँईं भुजा का और बाँयें हाथ से दाईं भुजा का एक साथ स्पर्श)। विच्चे—नेत्र-त्रयाय वौषट् (दाहिने हाथ की तर्जनी-मध्यमा-अनामा से एक साथ क्रमशः दांएं नेत्र, ललाट-मध्य और बांएं नेत्र का स्पर्श)। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे—अस्त्राय फट् (दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से बांयीं ओर से पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी ओर से आगे की ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजाये)।

अक्षर-न्यास

निम्नाङ्कित वाक्यों को पढ़कर क्रमशः शिखा आदि का दाहिने हाथ की अँगुलियों से स्पर्श करे—

ऐं नमः—शिखायां। ह्रीं नमः—दक्षिण-नेत्रे। क्लीं नमः—वाम-नेत्रे। चां नमः—दक्षिण-कर्णे। मुं नमः—वाम-कर्णे। डां नमः—दक्षिण-नासा-पुटे। यैं नमः—वाम-नासा-पुटे। विं नमः—मुखे। च्चें नमः—गुह्ये।

इस प्रकार न्यास कर मूल-मन्त्र से आठ बार व्यापक न्यास (दोनों हाथों द्वारा सिर से लेकर पैर तक के सब अङ्गों का स्पर्श) करे। फिर प्रत्येक दिशा में चुटकी बजाते हुए दिङ्-न्यास करे—

दिङ्-न्यास

ऐं—प्राच्यै नमः। ऐं—आग्नेय्यै नमः। ह्रीं—दक्षिणायै नमः। ह्रीं—नैर्ऋत्यै नमः। क्लीं प्रतीच्यै नमः। क्लीं—वायव्यै नमः। चामुण्डायै—उदीच्यै नमः। चामुण्डायै—ऐशान्यै नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे—ऊर्ध्वायै नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे—भूम्यै नमः।

ध्यानम् – खड्गं चक्र-गदेषु-चाप-परिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः।
शङ्खं सन्दधतीं करैस्त्रि-नयनां सर्वाङ्ग-भूषावृतां॥
नीलाश्म-द्युतिमास्य-पाद-दशकां सेवे महा-कालिकाम्।
यामस्तौत् स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥१॥

अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषु-कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकाम् ।
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म-जलजं घण्टां सुरा-भाजनम् ॥
शूलं पाश-सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननाम् ।
सेवे सैरिभ-मर्दिनोमिह महा-लक्ष्मीं सरोज-स्थिताम् ॥२॥
घण्टा-शूल-हलानि शङ्ख-मुसले चक्रं धनुः सायकम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त - विलसच्छीतांशु - तुल्य - प्रभाम् ॥
गौरी - देह-समुद्भवां त्रिनयनामाधार - भूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनु - भजे शुम्भादि - दैत्यार्दिनीम् ॥३॥

नवार्ण-मन्त्राक्षर-ध्यानं—

'वाग्'-बीजं हि दीप-समान-दीप्तम् । 'माया'ऽति-तेजो द्वितीयार्क-बिम्बम् ।
'कामं' च वैश्वानर-तुल्य-रूपम् । प्रतीयमानं तु सुखाय चिन्त्यम् ।
'चा' शुद्ध-जाम्बू-नद-तुल्य-कान्तिम् । 'मुं' पञ्चमं रक्त-तरं प्रकल्पम् ।
'डा' षष्ठमुग्रार्ति-हरे सुनीलम् । 'यै' सप्तमं कृष्ण-तरं रिपुघ्नम् ।
'वि' पाण्डुरं चाष्टममादि-सिद्धिम् । 'च्चे' धूम्र-वर्णं नवमं विशालम् ।
एतानि बीजानि नवात्मकस्य । जपात् प्रदध्युः सकलार्थ-सिद्धिम् ।

सर्व-प्रथम नवार्ण मन्त्र के देवता-त्रय महा-काली, महा-लक्ष्मी, महा-सरस्वती का ध्यान करे । तत्पश्चात् नवार्ण-मन्त्र के तीनों बीजों (ऐं, ह्रीं, क्लीं) सहित प्रत्येक अक्षर का उपर्युक्त प्रकार से ध्यान करे । फिर 'ऐं ह्रीं अक्ष-मालिकायै नमः' से माला की पूजा कर प्रार्थना करे—

ॐ मां माले महा-माये सर्व-शक्ति-स्वरूपिणि ! चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥
अविघ्नं कुरु माले ! त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे । जप-काले च सिद्धचर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥
ॐ अक्ष-मालाधिपतये सु-सिद्धिं देहि देहि सर्व-मन्त्रार्थ-साधिनि !
साधय साधय सर्व-सिद्धिं परि-कल्पय परि-कल्पय मे स्वाहा ॥

इसके बाद 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मन्त्र का १०८ बार अथवा १००८ बार जप करे । इस मन्त्र-राज का अर्थ इस प्रकार है—हे चित्-स्वरूपिणी महा-सरस्वति ! हे सद्-रूपिणी महा-लक्ष्मि ! हे आनन्द-रूपिणी महा-कालि ! ब्रह्म-विद्या पाने के लिये हम सब समय तुम्हारा ध्यान करते हैं । हे महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-स्वरूपिणी चण्डिके ! तुम्हें नमस्कार है । अविद्या-रूप रज्जु की दृढ़ ग्रन्थि को खोलकर मुझे मुक्त करो ।

जप के पश्चात् उत्तर-न्यास करे (यदि सम्भव हो) अर्थात् आरम्भ में जैसे किया था, उसी प्रकार कर-न्यास, हृदयादि-न्यास करे । अन्त में इस प्रकार प्रार्थना करे—

गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्-कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्-प्रसादाद् महेश्वरि ॥

इस श्लोक को पढ़ कर देवी के वाम-हस्त (बाँयें हाथ) में जप समर्पण की भावना करे ।

बीज-गायत्री

बीज-त्रयायै विद्महे तत्-प्रधानायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् ।

षडङ्ग-न्यास	कर-न्यासः	हृदयादि-न्यासः
बीज-त्रयायै	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
विद्महे	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
तत्प्रधानायै	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
धीमहि	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुं
तन्नः शक्तिः	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
प्रचोदयात्	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

तत्व-शुद्धि

पाठ करने से पूर्व तत्त्व-शुद्धि के लिये बीज-त्रय द्वारा निम्न प्रकार से आचमन करना चाहिए—

ऐं आत्म-तत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा ।
ह्रीं विद्या-तत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा ।
क्लीं शिव-तत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा ।
ऐं ह्रीं क्लीं सर्व-तत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा ।

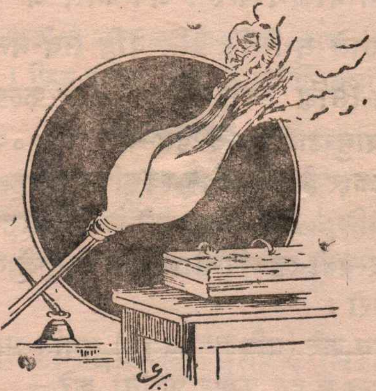

बीज-त्रयात्मक

दुर्गा सप्तशती

['श्री हेमवती-पीठ' के संस्थापक परम पूज्य श्रीस्वामी हिमालय अरण्य के सौजन्य से प्राप्त और 'रहस्य-तन्त्र' के आधार पर हस्त-लिखित पाण्डुलिपि को यहाँ शब्दशः पहले-पहल प्रकाशित किया जा रहा है। इस प्रकाशन से **'बीज-त्रयात्मक सप्तशती'** की अनूठी पाठ-विधि का परिचय मिलता है। उक्त पाण्डुलिपि 'पूर्णशैल पीठ' में श्री 'हीरानन्द' द्वारा 'श्रीनानतीन बाबा' की कृपा से लिखी गई, कब लिखी गई—इसका उल्लेख पाण्डुलिपि में नहीं है किन्तु अनेक दृष्टियों से इसका बड़ा महत्व है। यथा—१ इससे यह ज्ञात होता है कि यह पाठ-विधि 'रहस्य तन्त्र' के अनुसार है, २ इसमें न्यास, ध्यान, अध्यायादि का उल्लेख नहीं है, ३ बीजों में कुछ पाठान्तर हैं, इत्यादि। 'बीजात्मक सप्तशती' का यह संस्करण मननीय है।]

पहले निम्न गायत्री का जप १०८ बार कर मूल-मन्त्र (नवार्ण) का जप करे। तब सप्तशती का 'रहस्य-पाठ' करे—

ॐ बीज-त्रयायै विद्महे तत्-प्रधानायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्।

रहस्य-पाठ

प्रथमः

ॐ ऐं श्रीं नमः १ ॐ ऐं ह्लीं नमः २ ॐ ऐं क्लीं नमः ३ ॐ ऐं श्रीं नमः ४ ॐ ऐं प्रीं नमः ५ ॐ ऐं ह्लां नमः ६ ॐ ऐं ह्लीं नमः ७ ॐ ऐं सौं नमः ८ ॐ ऐं प्रें नमः ९ ॐ ॐ ऐं म्रीं नमः १० ॐ ऐं ह्लरीं नमः ११ ॐ ऐं म्लीं नमः १२ ॐ ऐं स्त्रीं नमः १३ ॐ ऐं क्रां नमः १४ ॐ ऐं ह्स्लीं नमः १५ ॐ ऐं क्रीं नमः १६ ॐ ऐं चां नमः १७ ॐ ऐं भें नमः १८ ॐ ऐं क्रीं नमः १९ ॐ ऐं वैं नमः २० ॐ ऐं ह्लौं नमः २१ ॐ ऐं युं नमः २२ ॐ ऐं जुं नमः २३ ॐ ऐं हं नमः २४ ॐ ऐं शं नमः २५ ॐ ऐं रौं नमः २६ ॐ ऐं यं नमः २७ ॐ ऐं विं नमः २८ ॐ ऐं वैं नमः २९ ॐ ऐं चें नमः ३० ॐ ऐं ह्लीं नमः ३१ ॐ ऐं क्रुं नमः ३२ ॐ ऐं सं नमः ३३ ॐ ऐं कं नमः ३४ ॐ ऐं श्रीं नमः ३५ ॐ ऐं त्रों नमः ३६ ॐ ऐं स्त्रां नमः ३७ ॐ ऐं ज्यैं नमः ३८ ॐ ऐं रौं नमः ३९ ॐ ऐं द्रां नमः ४० ॐ ऐं द्रों नमः ४१ ॐ ऐं ह्लां नमः ४२ ॐ ऐं द्रूं नमः ४३ ॐ ऐं शां नमः ४४ ॐ ऐं म्रीं नमः ४५ ॐ ऐं श्रौं नमः ४६ ॐ ऐं जूं नमः ४७ ॐ ऐं ह्ल्रूं नमः ४८ ॐ ऐं श्रूं नमः ४९ ॐ ऐं प्रीं नमः ५० ॐ ऐं रं नमः ५१ ॐ ऐं वं नमः ५२ ॐ ऐं व्रीं नमः ५३ ॐ ऐं ब्लूं नमः ५४ ॐ ऐं स्त्रौं नमः ५५ ॐ ऐं ब्लां नमः ५६ ॐ ऐं लूं नमः ५७ ॐ ऐं सां नमः ५८ ॐ

ऐं रौं नमः ५९ ॐ ऐं ह्सौं नमः ६० ॐ ऐं क्रूं नमः ६१ ॐ ऐं शौं नमः ६२ ॐ ऐं श्रौं नमः ६३ ॐ ऐं वं नमः ६४ ॐ ऐं त्रूं नमः ६५ ॐ ऐं क्रौं नमः ६६ ॐ ऐं क्लूं नमः ६७ ॐ ऐं क्लीं नमः ६८ ॐ ऐं श्रीं नमः ६९ ॐ ऐं ब्लूं नमः ७० ॐ ऐं ठां नमः ७१ ॐ ऐं ह्रीं नमः ७२ ॐ ऐं स्त्रां नमः ७३ ॐ ऐं स्लूं नमः ७४ ॐ ऐं क्रैं नमः ७५ ॐ ऐं च्रां नमः ७६ ॐ ऐं फ्रां नमः ७७ ॐ ऐं जीं नमः ७८ ॐ ऐं लूं नमः ७९ ॐ ऐं स्लूं नमः ८० ॐ ऐं नों नमः ८१ ॐ ऐं स्त्रीं नमः ८२ ॐ ऐं प्रूं नमः ८३ ॐ ऐं स्त्रं नमः ८४ ॐ ऐं ज्रां नमः ८५ ॐ ऐं वां नमः ८६ ॐ ऐं ॐ नमः ८७ ॐ ऐं श्रौं नमः ८८ ॐ ऐं ऋं नमः ८९ ॐ ऐं रूं नमः ९० ॐ ऐं क्लीं नमः ९१ ॐ ऐं दुं नमः ९२ ॐ ऐं ह्रीं नमः ९३ ॐ ऐं गूं नमः ९४ ॐ ऐं लां नमः ९५ ॐ ऐं ह्रीं नमः ९६ ॐ ऐं गं नमः ९७ ॐ ऐं ऐं नमः ९८ ॐ ऐं श्रौं नमः ९९ ॐ ऐं जूं नमः १०० ॐ ऐं डें नमः १०१ ॐ ऐं श्रौं नमः १०२ ॐ ऐं छ्रां नमः १०३ ॐ ऐं क्लीं नमः १०४ ॥ ॐ तत्सत् प्रथमः ॥

द्वितीयः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं श्रीं नमः २ ॐ ऐं ह्सूं नमः ३ ॐ ऐं ह्रौं नमः ४ ॐ ऐं ह्रीं नमः ५ ॐ ऐं अं नमः ६ ॐ ऐं क्लीं नमः ७ ॐ ऐं चां नमः ८ ॐ ऐं मुं नमः ९ ॐ ऐं डां नमः १० ॐ ऐं यैं नमः ११ ॐ ऐं विं नमः १२ ॐ ऐं च्चें नमः १३ ॐ ऐं ईं नमः १४ ॐ ऐं सौंः नमः १५ ॐ ऐं व्रां नमः १६ ॐ ऐं त्रौं नमः १७ ॐ ऐं लूं नमः १८ ॐ ऐं वं नमः १९ ॐ ऐं ह्रां नमः २० ॐ ऐं क्रीं नमः २१ ॐ ऐं सौं नमः २२ ॐ ऐं यं नमः २३ ॐ ऐं ऐं नमः २४ ॐ ऐं मूं नमः २५ ॐ ऐं सः नमः २६ ॐ ऐं हं नमः २७ ॐ ऐं सं नमः २८ ॐ ऐं सों नमः २९ ॐ ऐं शं नमः ३० ॐ ऐं हं नमः ३१ ॐ ऐं ह्रौं नमः ३२ ॐ ऐं म्लीं नमः ३३ ॐ ऐं यूं नमः ३४ ॐ ऐं त्रूं नमः ३५ ॐ ऐं स्त्रीं नमः ३६ ॐ ऐं आं नमः ३७ ॐ ऐं प्रें नमः ३८ ॐ ऐं शं नमः ३९ ॐ ऐं ह्रां नमः ४० ॐ ऐं स्मूं नमः ४१ ॐ ऐं ऊं नमः ४२ ॐ ऐं गूं नमः ४३ ॐ ऐं व्र्यूं नमः ४४ ॐ ऐं ह्रूं नमः ४५ ॐ ऐं भैं नमः ४६ ॐ ऐं ह्रां नमः ४७ ॐ ऐं क्रं नमः ४८ ॐ ऐं सूं नमः ४९ ॐ ऐं ल्रीं नमः ५० ॐ ऐं श्रीं नमः ५१ ॐ ऐं द्रुं नमः ५२ ॐ ऐं ह्व्रूं नमः ५३ ॐ ऐं ह्सौं नमः ५४ ॐ ऐं क्रां नमः ५५ ॐ ऐं स्हौं नमः ५६ ॐ ऐं म्लूं नमः ५७ ॐ ऐं श्रीं नमः ५८ ॐ ऐं गैं नमः ५९ ॐ ऐं क्रूं नमः ६० ॐ ऐं त्रीं नमः ६१ ॐ ऐं क्स्त्रीं नमः ६२ ॐ ऐं कं नमः ६३ ॐ ऐं फ्रौं नमः ६४ ॐ ऐं ह्रीं नमः ६५ ॐ ऐं शां नमः ६६ ॐ ऐं क्ष्म्रीं नमः ६७ ॐ ऐं रों नमः ६८ ॐ ऐं ङं नमः ६९ ॥ द्वितीयः ॥

तृतीयः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं क्लीं नमः २ ॐ ऐं सां नमः ३ ॐ ऐं त्रों नमः ४ ॐ ऐं प्रूं नमः ५ ॐ ऐं ग्लौं नमः ६ ॐ ऐं क्रौं नमः ७ ॐ ऐं व्रीं नमः ८ ॐ ऐं स्लीं नमः ९ ॐ ऐं ह्लीं नमः १० ॐ ऐं ह्लौं नमः ११ ॐ ऐं श्रां नमः १२ ॐ ऐं ग्रीं नमः १३ ॐ ऐं क्रूं नमः १४ ॐ ऐं क्रौं नमः १५ ॐ ऐं ॐ नमः १६ ॐ ऐं द्लूं नमः १७ ॐ ऐं वूं नमः १८ ॐ ऐं क्षं नमः १९ ॐ ऐं ॐ नमः २० ॐ ऐं क्रौं नमः २१ ॐ ऐं क्ष्क्लरीं नमः २२ ॐ ऐं वां नमः २३ ॐ ऐं श्रूं नमः २४ ॐ ऐं ग्लूं नमः २५ ॐ ऐं ल्रीं नमः २६ ॐ ऐं प्रें नमः २७ ॐ ऐं हूं नमः २८ ॐ ऐं ह्लौं नमः २९ ॐ ऐं दें नमः ३० ॐ ऐं नूं नमः ३१ ॐ ऐं आं नमः ३२ ॐ ऐं फ्रां नमः ३३ ॐ ऐं प्रीं नमः ३४ ॐ ऐं दं नमः ३५ ॐ ऐं फ्रीं नमः ३६ ॐ ऐं ह्रीं नमः ३७ ॐ ऐं गूं नमः ३८ ॐ ऐं श्रौं नमः ३९ ॐ ऐं सां नमः ४० ॐ ऐं श्रीं नमः ४१ ॐ ऐं जुं नमः ४२ ॐ ऐं हं नमः ४३ ॐ ऐं सां नमः ४४ ॥ तृतीयः ॥

चतुर्थः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं सौं नमः २ ॐ ऐं दीं नमः ३ ॐ ऐं प्रें नमः ४ ॐ ऐं प्रां नमः ५ ॐ ऐं रूं नमः ६ ॐ ऐं भें नमः ७ ॐ ऐं सं नमः ८ ॐ ऐं श्रां नमः ९ ॐ ऐं ॐ नमः १० ॐ ऐं लूं नमः ११ ॐ ऐं डूं नमः १२ ॐ ऐं जूं नमः १३ ॐ ऐं धूं नमः १४ ॐ ऐं त्रैं नमः १५ ॐ ऐं ह्लीं नमः १६ ॐ ऐं श्रीं नमः १७ ॐ ऐं ईं नमः १८ ॐ ऐं ह्लां नमः १९ ॐ ऐं ह्ल्रूं नमः २० ॐ ऐं क्लूं नमः २१ ॐ ऐं क्रां नमः २२ ॐ ऐं ल्लूं नमः २३ ॐ ऐं फ्रें नमः २४ ॐ ऐं क्रीं नमः २५ ॐ ऐं म्लूं नमः २६ ॐ ऐं घ्रें नमः २७ ॐ ऐं श्रौं नमः २८ ॐ ऐं ह्लौं नमः २९ ॐ ऐं ब्रीं नमः ३० ॐ ऐं ह्लीं नमः ३१ ॐ ऐं त्रौं नमः ३२ ॐ ऐं ह्ललौं नमः ३३ ॐ ऐं गीं नमः ३४ ॐ ऐं यूं नमः ३५ ॐ ऐं ह्लीं नमः ३६ ॐ ऐं ह्लूं नमः ३७ ॐ ऐं भौं नमः ३८ ॐ ऐं ॐ नमः ३९ ॐ ऐं श्रं नमः ४० ॐ ऐं म्हौं नमः ४१ ॐ ऐं प्रीं नमः ४२ ॥ चतुर्थः ॥

पञ्चमः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं प्रीं नमः २ ॐ ऐं ॐ नमः ३ ॐ ऐं निं नमः ४ ॐ ऐं ल्रीं नमः ५ ॐ ऐं त्रौं नमः ६ ॐ ऐं क्रौं नमः ७ ॐ ऐं ह्सौं नमः ८ ॐ ऐं ह्लीं नमः ९ ॐ ऐं श्रौं नमः १० ॐ ऐं हूं नमः ११ ॐ ऐं क्लीं नमः १२ ॐ ऐं रौं नमः १३ ॐ ऐं स्त्रीं नमः १४ ॐ ऐं म्लीं नमः १५ ॐ ऐं प्लुं नमः १६ ॐ ऐं स्हौं नमः १७ ॐ ऐं स्त्रीं नमः १८ ॐ ऐं ग्लूं नमः १९ ॐ ऐं व्रीं नमः २० ॐ ऐं सौं नमः २१

ॐ ऐं लूं नमः २२ ॐ ऐं ल्लूं नमः २३ ॐ ऐं द्रां नमः २४ ॐ ऐं क्सां नमः २५ ॐ ऐं क्ष्त्रीं नमः २६ ॐ ऐं म्लां नमः २७ ॐ ऐं स्कं नमः २८ ॐ ऐं त्रूं नमः २९ ॐ ऐं स्वलूं नमः ३० ॐ ऐं क्रीं नमः ३१ ॐ ऐं छीं नमः ३२ ॐ ऐं म्लूं नमः ३३ ॐ ऐं वलूं नमः ३४ ॐ ऐं शां नमः ३५ ॐ ऐं ल्हीं नमः ३६ ॐ ऐं स्त्रूं नमः ३७ ॐ ऐं ल्लीं नमः ३८ ॐ ऐं लीं नमः ३९ ॐ ऐं सं नमः ४० ॐ ऐं लूं नमः ४१ ॐ ऐं हसूं नमः ४२ ॐ ऐं श्रूं नमः ४३ ॐ ऐं जूं नमः ४४ ॐ ऐं हस्ल्रीं नमः ४५ ॐ ऐं स्कीं नमः ४६ ॐ ऐं क्लां नमः ४७ ॐ ऐं श्रूं नमः ४८ ॐ ऐं हं नमः ४९ ॐ ऐं ह्लीं नमः ५० ॐ ऐं क्स्नूं नमः ५१ ॐ ऐं द्रौं नमः ५२ ॐ ऐं क्लूं नमः ५३ ॐ ऐं गां नमः ५४ ॐ ऐं सं नमः ५५ ॐ ऐं ल्स्त्रां नमः ५६ ॐ ऐं फ्रीं नमः ५७ ॐ ऐं स्लां नमः ५८ ॐ ऐं ल्लूं नमः ५९ ॐ ऐं फ्रें नमः ६० ॐ ऐं ॐ नमः ६१ ॐ ऐं स्म्लीं नमः ६२ ॐ ऐं ह्रां नमः ६३ ॐ ऐं ॐ नमः ६४ ॐ ऐं ह्लूं नमः ६५ ॐ ऐं हूं नमः ६६ ॐ ऐं नं नमः ६७ ॐ ऐं श्रां नमः ६८ ॐ ऐं वं नमः ६९ ॐ ऐं मं नमः ७० ॐ ऐं म्क्लीं नमः ७१ ॐ ऐं शां नमः ७२ ॐ ऐं लं नमः ७३ ॐ ऐं भैं नमः ७४ ॐ ऐं ल्लूं नमः ७५ ॐ ऐं हौं नमः ७६ ॐ ऐं ईं नमः ७७ ॐ ऐं चें नमः ७८ ॐ ऐं ल्क्रीं नमः ७९ ॐ ऐं ह्ल्रीं नमः ८० ॐ ऐं क्ष्म्ल्रीं नमः ८१ ॐ ऐं पूं नमः ८२ ॐ ऐं श्रौं नमः ८३ ॐ ऐं ह्रौं नमः ८४ ॐ ऐं भ्रूं नमः८५ ॐ ऐं क्स्त्रीं नमः ८६ ॐ ऐं आं नमः ८७ ॐ ऐं क्रूं नमः ८८ ॐ ऐं त्रूं नमः ८९ ॐ ऐं डुं नमः ९० ॐ ऐं जां नमः ९१ ॐ ऐं ह्ल्रूँ नमः ९२ ॐ ऐं फ्रौं नमः ९३ ॐ ऐं क्रौं नमः ९४ ॐ ऐं किं नमः ९५ ॐ ऐं ग्लूं नमः ९६ ॐ ऐं छ्क्लीं नमः ९७ ॐ ऐं रं नमः ९८ ॐ ऐं क्सैं नमः ९९ ॐ ऐं स्हुं नमः १०० ॐ ऐं श्रौं नमः १०१ ॐ ऐं श्श्रीं नमः १०२ ॐ ऐं ॐ नमः १०३ ॐ ऐं लूं नमः १०४ ॐ ऐं ल्हूं नमः १०५ ॐ ऐं ल्लुं नमः १०६ ॐ ऐं स्क्रीं नमः १०७ ॐ ऐं स्त्रौं नमः १०८ ॐ ऐं स्भ्रुं नमः १०९ ॐ ऐं क्ष्म्क्लीं नमः ११० ॐ ऐं व्रीं नमः १११ ॐ ऐं सीं नमः ११२ ॐ ऐं भूं नमः ११३ ॐ ऐं लां नमः ११४ ॐ ऐं श्रौं नमः ११५ ॐ ऐं स्हैं नमः ११६ ॐ ऐं ह्रीं नमः ११७ ॐ ऐं श्रीं नमः ११८ ॐ ऐं फ्रें नमः ११९ ॐ ऐं रूँ नमः १२० ॐ ऐं च्छ्रूं नमः १२१ ॐ ऐं ल्हूं नमः १२२ ॐ ऐं कं नमः १२३ ॐ ऐं द्रें नमः १२४ ॐ ऐं श्रीं नमः १२५ ॐ ऐं सां नमः १२६ ॐ ऐं ह्रीं नमः १२७ ॐ ऐं ऐं नमः १२८ ॐ ऐं स्क्लीं नमः १२९ ॥ पञ्चमः ॥

षष्ठः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं ऐं नमः २ ॐ ऐं त्रूं नमः ३ ॐ ऐं हौं नमः ४ ॐ ऐं क्रौं नमः ५ ॐ ऐं श्रौं नमः ६ ॐ ऐं त्रीं नमः ७ ॐ ऐं क्लीं नमः ८ ॐ ऐं प्रीं नमः ९ ॐ ऐं ह्रीं नमः १० ॐ ऐं ह्रीं नमः ११ ॐ ऐं श्रौं नमः १२ ॐ ऐं ऐं नमः १३ ॐ ऐं ॐ नमः १४ ॐ ऐं श्रीं नमः १५ ॐ ऐं क्रां नमः १६ ॐ ऐं हूं नमः १७ ॐ ऐं छ्रां नमः १८ ॐ ऐं क्ष्म्क्रीं नमः १९ ॐ ऐं ल्लुं नमः २० ॐ ऐं सौं नमः २१ ॐ ऐं ह्लौं नमः २२ ॐ ऐं क्रूं नमः २३ ॐ ऐं सौं नमः २४ ॥ षष्ठः ॥

सप्तमः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं कुं नमः २ ॐ ऐं ह्रीं नमः ३ ॐ ऐं ह्रं नमः ४ ॐ ऐं मूं नमः ५ ॐ ऐं त्रौं नमः ६ ॐ ऐं ह्लौं नमः ७ ॐ ऐं ॐ नमः ८ ॐ ऐं सूं नमः ९ ॐ ऐं क्लूं नमः १० ॐ ऐं कें नमः ११ ॐ ऐं नें नमः १२ ॐ ऐं लूं नमः १३ ॐ ऐं ह्स्लीं नमः १४ ॐ ऐं प्लूं नमः १५ ॐ ऐं शां नमः १६ ॐ ऐं स्लूं नमः १७ ॐ ऐं प्लीं नमः १८ ॐ ऐं प्रें नमः १९ ॐ ऐं अं नमः २० ॐ ऐं श्रौं नमः २१ ॐ ऐं ल्रीं नमः २२ ॐ ऐं श्रां नमः २३ ॐ ऐं सौं नमः २४ ॐ ऐं श्रौं नमः २५ ॐ ऐं प्रीं नमः २६ ॐ ऐं ह्स्प्रीं नमः २७ ॥ सप्तमः ॥

अष्टमः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं म्ह्ल्रीं नमः २ ॐ ऐं प्रूं नमः ३ ॐ ऐं एं नमः ४ ॐ ऐं क्रों नमः ५ ॐ ऐं ईं नमः ६ ॐ ऐं एं नमः ७ ॐ ऐं ल्रीं नमः ८ ॐ ऐं फ्रौं नमः ९ ॐ ऐं म्लूं नमः १० ॐ ऐं नों नमः ११ ॐ ऐं हूं नमः १२ ॐ ऐं फ्रौं नमः १३ ॐ ऐं ग्लौं नमः १४ ॐ ऐं स्मौं नमः १५ ॐ ऐं सौं नमः १६ ॐ ऐं श्रीं नमः १७ ॐ ऐं स्हौं नमः १८ ॐ ऐं ख्सें नमः १९ ॐ ऐं क्ष्म्लीं नमः २० ॐ ऐं ह्लां नमः २१ ॐ ऐं वीं नमः २२ ॐ ऐं लूं नमः २३ ॐ ऐं ल्सीं नमः २४ ॐ ऐं ब्लों नमः २५ ॐ ऐं त्स्रौं नमः २६ ॐ ऐं ब्रूं नमः २७ ॐ ऐं श्क्लां नमः २८ ॐ ऐं श्रूं नमः २९ ॐ ऐं ह्लीं नमः ३० ॐ ऐं शीं नमः ३१ ॐ ऐं क्लीं नमः ३२ ॐ ऐं क्लौं नमः ३३ ॐ ऐं फ्रें नमः ३४ ॐ ऐं हूं नमः ३५ ॐ ऐं क्लूं नमः ३६ ॐ ऐं तीं नमः ३७ ॐ ऐं म्लूं नमः ३८ ॐ ऐं हं नमः ३९ ॐ ऐं स्लूं नमः ४० ॐ ऐं औं नमः ४१ ॐ ऐं ल्हौं नमः ४२ ॐ ऐं श्ल्रीं नमः ४३ ॐ ऐं यां नमः ४४ ॐ ऐं थ्लीं नमः ४५ ॐ ऐं ल्हीं नमः ४६ ॐ ऐं ग्लौं नमः ४७ ॐ ऐं ह्रौं नमः ४८ ॐ ऐं प्रां नमः ४९ ॐ ऐं क्रीं नमः ५० ॐ ऐं क्लीं नमः ५१ ॐ ऐं न्स्लूं नमः ५२ ॐ ऐं हीं नमः ५३ ॐ ऐं ह्लौं नमः ५४ ॐ ऐं ह्रैं नमः ५५ ॐ ऐं भ्रूं नमः ५६ ॐ ऐं सौं नमः ५७ ॐ ऐं श्रीं नमः ५८ ॐ ऐं प्सूं नमः ५९ ॐ ऐं द्रौं नमः ६० ॐ ऐं स्स्त्रां नमः ६१ ॐ ऐं ह्स्लीं नमः ६२ ॐ ऐं स्ल्रीं नमः ६३ ॥ अष्टमः ॥

नवमः

ॐ ऐं रौं नमः १ ॐ ऐं क्लीं नमः २ ॐ ऐं म्लौं नमः ३ ॐ ऐं श्रौं नमः ४ ॐ ऐं ग्लीं नमः ५ ॐ ऐं ह्रौं नमः ६ ॐ ऐं ह्सौं नमः ७ ॐ ऐं ईं नमः ८ ॐ ऐं ब्रूं नमः

९ ॐ ऐं श्रां नमः १० ॐ ऐं लूं नमः ११ ॐ ऐं श्रां नमः १२ ॐ ऐं श्रीं नमः १३ ॐ ऐं क्रौं नमः १४ ॐ ऐं प्रूं नमः १५ ॐ ऐं क्लीं नमः १६ ॐ ऐं भ्रूं नमः १७ ॐ ऐं ह्रौं नमः १८ ॐ ऐं क्रीं नमः १९ ॐ ऐं म्लीं नमः २० ॐ ऐं ग्लौं नमः २१ ॐ ऐं ह्सूं नमः २२ ॐ ऐं प्लीं नमः २३ ॐ ऐं ह्रौं नमः २४ ॐ ऐं ह्स्रां नमः २५ ॐ ऐं स्हौं नमः २६ ॐ ऐं ल्लूं नमः २७ ॐ ऐं क्स्लीं नमः २८ ॐ ऐं श्रीं नमः २९ ॐ ऐं स्तूं नमः ३० ॐ ऐं च्चें नमः ३१ ॐ ऐं वीं नमः ३२ ॐ ऐं क्ष्लूं नमः ३३ ॐ ऐं श्लूं नमः ३४ ॐ ऐं क्रूं नमः ३५ ॐ ऐं क्रां नमः ३६ ॐ ऐं ह्रौं नमः ३७ ॐ ऐं क्रां नमः ३८ ॐ ऐं स्क्ष्लीं नमः ३९ ॐ ऐं सूं नमः ४० ॐ ऐं फ्रूं नमः ४१ ॥ नवमः ॥

दशमः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं ह्रीं नमः २ ॐ ऐं ब्लूं नमः ३ ॐ ऐं ह्रीं नमः ४ ॐ ऐं म्लूं नमः ५ ॐ ऐं श्रौं नमः ६ ॐ ऐं ह्रीं नमः ७ ॐ ऐं ग्लीं नमः ८ ॐ ऐं ह्लं नमः ९ ॐ ऐं ध्रूं नमः १० ॐ ऐं हुं नमः ११ ॐ ऐं द्रौं नमः १२ ॐ ऐं श्रीं नमः १३ ॐ ऐं त्रूं नमः १४ ॐ ऐं ब्रूं नम १५ ॐ ऐं फ्रें नमः १६ ॐ ऐं ह्रीं नमः १७ ॐ ऐं जुं नमः १८ ॐ ऐं सौं नमः १९ ॐ ऐं स्लूं नमः २० ॐ ऐं प्रें नमः २१ ॐ ऐं ह्स्वां नमः २२ ॐ ऐं प्रीं नमः २३ ॐ ऐं फ्रां नमः २४ ॐ ऐं क्रीं नमः २५ ॐ ऐं श्रीं नमः २६ ॐ ऐं क्रां नमः २७ ॐ ऐं सः नमः २८ ॐ ऐं क्लीं नमः २९ ॐ ऐं ब्रें नमः ३० ॐ ऐं इं नमः ३१ ॐ ऐं ज्स्ह्लरीं नमः ३२ ॥ दशमः ॥

एकादशः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं क्रूं नमः २ ॐ ऐं श्रीं नमः ३ ॐ ऐं ल्लीं नमः ४ ॐ ऐं प्रें नमः ५ ॐ ऐं सौं नमः ६ ॐ ऐं स्हौं नमः ७ ॐ ऐं श्रूं नमः ८ ॐ ऐं क्लीं नमः ९ ॐ ऐं स्क्लीं नमः १० ॐ ऐं प्रीं नमः ११ ॐ ऐं ग्लौं नमः १२ ॐ ऐं ह्रस्हीं नमः १३ ॐ ऐं स्तौं नमः १४ ॐ ऐं लीं नमः १५ ॐ ऐं म्लीं नमः १६ ॐ ऐं स्तूं नमः १७ ॐ ऐं ज्स्ह्रां नमः १८ ॐ ऐं फ्रूं नमः १९ ॐ ऐं क्रं नमः २० ॐ ऐं ह्रीं नमः २१ ॐ ऐं ल्लूं नमः २२ ॐ ऐं क्ष्म्रीं नमः २३ ॐ ऐं श्रूं नमः २४ ॐ ऐं इं नमः २५ ॐ ऐं लुं नमः २६ ॐ ऐं त्रें नमः २७ ॐ ऐं द्रूं नमः २८ ॐ ऐं ह्रौं नमः २९ ॐ ऐं क्लीं नमः ३० ॐ ऐं सूं नमः ३१ ॐ ऐं ह्रौं नमः ३२ ॐ ऐं श्वं नमः ३३ ॐ ऐं ब्रुं नमः ३४ ॐ ऐं फ्रुं नमः ३५ ॐ ऐं ह्रीं नमः ३६ ॐ ऐं लं नमः ३७ ॐ ऐं ह्सौं नमः ३८ ॐ ऐं सें नमः

३९ ॐ ऐं ह्रीं नमः ४० ॐ ऐं ल्हीं नमः ४१ ॐ ऐं विं नमः ४२ ॐ ऐं प्लीं नमः ४३ ॐ ऐं क्ष्म्क्लीं नमः ४४ ॐ ऐं त्स्रां नमः ४५ ॐ ऐं प्रं नमः ४६ ॐ ऐं म्लीं नमः ४७ ॐ ऐं स्त्रुं नमः ४८ ॐ ऐं क्ष्मां नमः ४९ ॐ ऐं स्तूं नमः ५० ॐ ऐं स्ह्रीं नमः ५१ ॐ ऐं थ्प्रीं नमः ५२ ॐ ऐं क्रीं नमः ५३ ॐ ऐं श्रां नमः ५४ ॐ ऐं म्लीं नमः ५५ ।। एकादशः ।।

द्वादशः

ॐ ऐं ह्रीं नमः १ ॐ ऐं ॐ नमः २ ॐ ऐं श्रीं नमः ३ ॐ ऐं ईं नमः ४ ॐ ऐं क्लीं नमः ५ ॐ ऐं क्रूं नमः ६ ॐ ऐं श्रूं नमः ७ ॐ ऐं प्रां नमः ८ ॐ ऐं क्रूं नमः ९ ॐ ऐं दिं नमः १० ॐ ऐं फ्रें नमः ११ ॐ ऐं हं नमः १२ ॐ ऐं सः नमः १३ ॐ ऐं चें नमः १४ ॐ ऐं सूं नमः १५ ॐ ऐं प्रीं नम १६ ॐ ऐं ब्लूं नमः १७ ॐ ऐं श्रां नमः १८ ॐ ऐं औं नमः १९ ॐ ऐं ह्रीं नमः २० ॐ ऐं क्रीं नमः २१ ॐ ऐं द्रां नमः २२ ॐ ऐं श्रीं नमः २३ ॐ ऐं स्लीं नमः २४ ॐ ऐं क्लीं नमः २५ ॐ ऐं स्लूं नमः २६ ॐ ऐं ह्रीं नमः २७ ॐ ऐं ब्लीं नमः २८ ॐ ऐं त्रौं नमः २९ ॐ ऐं ॐ नमः ३० ॐ ऐं श्रौं नमः ३१ ॐ ऐं ऐं नमः ३२ ॐ ऐं प्रें नमः ३३ ॐ ऐं द्रूं नमः ३४ ॐ ऐं क्लूं नमः ३५ ॐ ऐं औं नमः ३६ ॐ ऐं सूं नमः ३७ ॐ ऐं चें नमः ३८ ॐ ऐं ह्लूं नमः ३९ ॐ ऐं प्लीं नमः ४० ॐ ऐं क्षां नमः ४१ ।। द्वादशः ।।

त्रयोदशः

ॐ ऐं श्रौं नमः १ ॐ ऐं व्रीं नमः २ ॐ ऐं ॐ नमः ३ ॐ ऐं श्रौं नमः ४ ॐ ऐं ह्रां नमः ५ ॐ ऐं श्रीं नमः ६ ॐ ऐं श्रीं नमः ७ ॐ ऐं ॐ नमः ८ ॐ ऐं प्लीं नमः ९ ॐ ऐं सौं नमः १० ॐ ऐं ह्रीं नमः ११ ॐ ऐं क्रीं नमः १२ ॐ ऐं ल्लूं नमः १३ ॐ ऐं क्लीं नमः १४ ॐ ऐं ह्लीं नमः १५ ॐ ऐं प्लीं नमः १६ ॐ ऐं श्रीं नमः १७ ॐ ऐं ल्लीं नमः १८ ॐ ऐं श्रूं नमः १९ ॐ ऐं ह्रीं नमः २० ॐ ऐं त्रूं नमः २१ ॐ ऐं हं नमः २२ ॐ ऐं ह्रां नमः २३ ॐ ऐं प्रीं नमः २४ ॐ ऐं ऊं नमः २५ ॐ ऐं सूं नमः २६ ॐ ऐं ल्हौं नमः २७ ॐ ऐं वौं नमः २८ ॐ ऐं आं नमः २९ ॐ ऐं ॐ नमः ३० ।। त्रयोदशः ।।

ॐ बीज-त्रयायै विद्महे तत्-प्रधानायै धीमहि तन्न शक्तिः प्रचोदयात् ।। नवार्णं १०८ जपेत् ।

।। ॐ रहस्य-तन्त्रे बीज-त्रयात्मक-सप्तशती पूर्णम् । ७०० श्लोक-मन्त्राः ।।

परिशिष्ट

प्रस्तुत 'बीजात्मक सप्तशती' विशेषाङ्क के अन्तर्गत श्रीदुर्गा-सप्तशती के तेरह अध्यायों के प्रत्येक मन्त्र के पूर्व और आदि में सम्पुटित होनेवाले बीजों के दो स्वरूप सङ्कलित किये गए हैं। इनमें से प्रथम 'बीजात्मक सप्तशती' के प्रस्तोता राजर्षि अतुल टण्डन, अधिवक्ता, कानपुर (उत्तर प्रदेश) ने अनेक संस्करणों का अध्ययन कर बड़े परिश्रम से मात्र बीजों के पाठ की सविधि पद्धति प्रस्तुत की है। द्वितीय 'बीज-त्रयात्मक दुर्गा-सप्तशती' एक दुर्लभ पाण्डुलिपि का शब्दशः प्रकाशन है। इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन सप्तशती के प्रेमियों के लिए उद्‌बोधक सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि गुप्तावतार बाबाश्री की कृपा से प्राप्त एवं प्रकाशित 'मन्त्रात्मक सप्तशती' में प्रायः इन्हीं बीजों से सम्पुटित सात सौ मन्त्रों का विस्तृत विधान (विनियोग, ऋष्यादि-षडङ्ग-न्यास, ध्यान, जप-संख्या, हवनीय सामग्री) दिया गया है। श्री टण्डन जी ने 'बीजात्मक सप्तशती' के प्रस्तुतीकरण में बाबाश्री की इस सप्तशती में दिए बीजों को भी ध्यान में रखा है।

आशा है कि इस प्रकाशन से सप्तशती के प्रयोगात्मक स्वरूप पर शोधात्मक दृष्टि रखनेवाले विद्वान् साधकों को विशेष सुविधा प्राप्त होगी और कालान्तर में इस प्रसङ्ग में और भी महत्वपूर्ण बातें प्रकाश में आ सकेंगी। इसी उद्‌देश्य से यह विशेषाङ्क प्रकाशित किया जा रहा है। सप्तशती के मर्मज्ञ साधकों से अनुरोध है कि इस विषय पर प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करने के महत्कार्य में अपना अमूल्य सहयोग देने की कृपा करें, जिससे लोग इस विधान से अधिकाधिक लाभ उठा सकें।

'कौल-कल्पतरु चण्डी' मासिक [हिन्दी] के स्वामित्व तथा तत्सम्बन्धी विवरण

१—प्रकाशन का स्थान — प्रयाग
२—प्रकाशन की अवधि — मासिक
३—मुद्रक का नाम — ऋतशील शर्मा
पता — परा-वाणी प्रेस, प्रयाग—६
४—प्रकाशक का नाम — ऋतशील शर्मा
राष्ट्रीयता — भारतीय
पता — शाक्त-साधना-पीठ, प्रयाग—६
५—सम्पादक का नाम — ऋतशील शर्मा
राष्ट्रीयता — भारतीय
६—उन व्यक्तियों के नाम और पते जो इस पत्रिका के मालिक या साझेदार हैं या जो उसकी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हैं। — ऋतशील शर्मा

मैं, ऋतशील शर्मा, घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गए विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं।

—ऋतशील शर्मा (प्रकाशक)

२ अतिरिक्त विशेषांक (कुल ३०० पृष्ठ)

पहला विशेषाङ्क, लगभग १५० पृष्ठ

सविधि
दश-महाविद्या स्तोत्र-संग्रह

(भाग ३)

'चण्डी' के ४२ वें वर्ष में 'दश-महाविद्या स्तोत्र-संग्रह', भाग १ व भाग २ प्रकाशित हो चुके हैं। उसी क्रम में यह भाग ३ 'श्रीविद्या-स्तव-मञ्जरी' प्रकाशित होगा। इसका महत्व भी स्पष्ट है।

दूसरा विशेषाङ्क, लगभग १५० पृष्ठ

हिन्दी
प्राण-तोषिणी तन्त्र

(भाग ३)

'चण्डी' के ४२-४३ वें वर्ष में हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र, भाग १ व भाग २ के अन्तर्गत क्रमशः १ सर्ग-काण्ड, २ धर्म-काण्ड, ३ अर्थ-काण्ड, ४ काम्य-काण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। इस भाग ३ में 'प्राण-तोषिणी तन्त्र' के शेष तीन काण्डों—५ भक्ति-कांड, ६ ज्ञान-कांड और ७ नैर्गुण्य-कांड का हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया जायेगा। इसकी उपयोगिता भी स्वयं-सिद्ध है।

सदस्यता-सम्बन्धी नियम

१ 'चण्डी' के ४५ वें वर्ष (५०० पृष्ठीय) का वार्षिक सदस्यता - शुल्क पचपन रु० (५५ रु०) होगा। जिसमें इक्कीस रु० (२१ रु०)—६ सामान्य अङ्क व चौंतीस रु० (३४ रु०) दो अतिरिक्त विशेषाङ्क के लिये होगा। ये दोनों विशेषाङ्क रजिस्ट्री द्वारा एक साथ जनवरी ८७ में भेजे जायेंगे। इस प्रकार रजिस्ट्री हेतु कुल सदस्यता शुल्क ५५-०० + ६-०० = ६१-०० रु० भेजना होगा।

२ जो सदस्य ६१ रु० एक साथ भेजकर रजिस्ट्री द्वारा मँगाने में समर्थ न हों, वे वी० पी० सदस्य बन सकते हैं। वी० पी० सदस्यता हेतु मनीआर्डर द्वारा केवल सामान्य सदस्यता-शुल्क इक्कीस रु० (२१ रु०) भेजना होगा। दोनों विशेषाङ्क ३४-०० + ७-०० = ४१-०० रु० की वी० पी० द्वारा जनवरी ८७ में भेजे जायेंगे।

विशेष—१ मनीआर्डर—'चण्डी' कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद—६ के पते पर भेजें।

२ बैंक-ड्राफ्ट—'कौल-कल्पतरु' चण्डी, इलाहाबाद के नाम भेजें।

३ पोस्टल आर्डर—ऋतशील शर्मा, इलाहाबाद के नाम भेजें। डाकघर सोहबतियाबाग लिखें।

रजि० सं० ३२६८१।७५]   अप्रेल-मई १९८६   [रजि० सं० ए० डी० ६६

गुप्तावतार बाबाश्री की कृपा से प्राप्त दुर्लभ ग्रन्थ

मन्त्रात्मक सप्तशती

'मन्त्रात्मक-सप्तशती' ग्रन्थ से 'चण्डी' पत्रिका के पाठक भलीभाँति परिचित हैं। इस ग्रन्थ का भाग १ (प्रथम चरित), भाग २ (मध्यम चरित) पिछले वर्षों हमारे द्वारा प्रकाशित हुआ है। अब भाग ३ (उत्तम चरित) भी प्रकाशित हो गया है। 'चण्डी' पत्रिका के सदस्यों के लिये इस भाग ३ का मूल्य २५-०० रु० है। सम्पूर्ण सजिल्द सेट (तीनों भाग) का मूल्य ५५-०० रु० है।

प्राण-तोषिणी तन्त्र

'प्राण-तोषिणी तन्त्र' के हिन्दी अनुवाद से 'चण्डी' पत्रिका के सदस्य भलीभांति परिचित हैं। तन्त्र-प्रेमी बन्धुओं के लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें १२५ प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थों द्वारा तान्त्रिक साधना के महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन हुआ है। इसीलिये हिन्दी अनुवाद के साथ-साथ मूल-ग्रन्थ का भी प्रकाशन किया जा रहा है, जिससे तन्त्र-प्रेमी बन्धु इससे पूरा लाभ उठा सकें। हिन्दी अनुवाद को देखते हुये मूल संस्कृत का अध्ययन अधिक संस्कृत न जाननेवाले बन्धु भी कर सकते हैं। 'चण्डी' सदस्यों के लिये मूल्य इस प्रकार है—

प्राण-तोषिणी तन्त्र, मूल-मात्र,	सर्ग-काण्ड एवम् धर्म-काण्ड,	सजिल्द	३५ रु०
प्राण-तोषिणी तन्त्र, मूल-मात्र,	अर्थ-काण्ड एवम् काम्य-काण्ड,	सजिल्द	४० रु०

सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक : ऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, इलाहाबाद—६